बड़ों का बचपन

लेखक

माइल ख़ैराबादी

अनुवादक

गुलज़ार सहराई

नामों की सूची

कुछ अल्फ़ाज़ के मतलब

इस किताब में कुछ ऐसे अल्फ़ाज़ आएँगे जिनको मुख़्तसर शक्ल में लिखा गया है। किताब पढ़ने से पहले ज़रूरी है कि उन अल्फ़ाज़ की मुकम्मल शक्ल और मतलब समझ लिया जाए, ताकि किताब पढ़ते वक़्त कोई परेशानी न हो। वे अल्फ़ाज़ ये हैं :

अलै., अलैहि. : इसकी मुकम्मल शक्ल है, *'अलैहिस्सलाम',* यानी 'उनपर सलामती हो !' नबियों और फ़रिश्तों के नाम के साथ इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए ये अल्फ़ाज़ बढ़ा देते हैं।

रज़ि. : इसकी मुकम्मल शक्ल है, *'रज़ियल्लाहु अन्हु',* मतलब है 'अल्लाह उनसे राज़ी हो !' 'सहाबी' के नाम के साथ यह इज़्ज़त और मुहब्बत की दुआ बढ़ा देते हैं।

'सहाबी' उस ख़ुशक़िस्मत मुसलमान को कहते हैं जिसे नबी (सल्ल.) से मिलने का मौक़ा मिला हो। सहाबी की जमा (बहुवचन) 'सहाबा' और मुअन्नस (स्त्रीलिंग) 'सहाबियः' है।

रज़ि. अगर 'सहाबियः' के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो *'रज़ियल्लाहु अन्हा'* पढ़ते हैं और अगर 'सहाबा' के लिए इस्तेमाल हुआ हो तो *'रज़ियल्लाहु अन्हुम'* पढ़ते हैं।

सल्ल. : इसकी मुकम्मल शक्ल है –*'सल्लल्लाहु अलैहि व-सल्लम'*। इसका मतलब है 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे !'

अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब का नाम लिखते, बोलते या सुनते हैं तो इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए यह दुआ बढ़ा देते हैं।

रह. : इसकी मुकम्मल शक्ल है, *'रहमतुल्लाह अलैह'* यानी 'उनपर अल्लाह की रहमत हो !' वे गुज़रे हुए नेक बुज़ुर्ग मर्द (या औरतें) जिन्होंने इस्लाम का बोलबाला करने के लिए बे-पनाह कोशिशें कीं, उनका नाम लेते या लिखते वक़्त एहतिराम के लिए दुआ के ये अल्फ़ाज़ लगा देते हैं।

हज़रत यूसुफ़ (अलै.) का बचपन

हज़रत यूसुफ़ (अलै.) अल्लाह के प्रसिद्ध नबियों में से हैं । आपके पिता हज़रत याकूब (अलै.) भी नबी थे । दादा हज़रत इसहाक़ (अलै.) भी नबी थे और परदादा हज़रत इबराहीम (अलै.) भी नबी थे । हज़रत याकूब (अलै.) कनआन (फ़िलस्तीन) में रहा करते थे । हज़रत यूसुफ़ (अलै.) कनआन ही में पैदा हुए ।

हज़रत यूसुफ़ (अलै.) का पूरा हाल अल्लाह तआला ने कुरआन मजीद में बयान किया है और इस क़िस्से को सारे क़िस्सों से अच्छा बताया है । हम इस सबसे अच्छे क़िस्से (अहसनुल-क़सस) से यह किताब शुरू करते हैं । यह क़िस्सा बेहद दिलचस्प और शिक्षाप्रद है । हम बहुत संक्षेप में उसे बयान करेंगे आप सुनिए और शिक्षा लीजिए--

हज़रत यूसुफ़ (अलै.) बारह भाई थे, उनमें से बिन-यमीन और हज़रत यूसुफ़ (अलै.) सगे थे और शेष भाई सौतेले थे । हज़रत यूसुफ़ (अलै.) अत्यन्त सुन्दर, सुशील और समझदार थे । वे अपना अधिक समय अपने पिता हज़रत याकूब (अलै.) के साथ अल्लाह की इबादत (उपासना) में व्यतीत करते थे ।

एक दिन की बात है कि हज़रत यूसुफ़ (अलै.) सोकर उठे तो उन्होंने हज़रत याकूब (अलै.) से कहा, "अब्बाजान ! रात मैंने एक सपना देखा कि ग्यारह सितारे हैं और सूरज और चाँद हैं और वे मुझे सज्दा कर रहे हैं ।" हज़रत याकूब (अलै.) ने सपने का हाल सुना तो बोले, "बेटा ! अपने सपने का हाल अपने भाइयों से न कहना, कहीं ऐसा न हो कि वे तुझे सताएँ । मुझे तो ऐसा लगता है कि तेरा रब तुझे अपने काम के लिए चुन लेगा, तुझे अपना नबी बनाएगा, बड़ी समझ देगा और जिस प्रकार तेरे दादा इसहाक़ (अलै.) और परदादा इबराहीम (अलै.) को उसने अपना रसूल बनाया था, इसी प्रकार तुझपर भी अपनी कृपा करेगा ।"

इस सपने के बाद हज़रत याकूब (अलै.) को हज़रत यूसुफ़ (अलै.) से ऐसी मुहब्बत हो गई कि वे उन्हें हर समय पास रखते और पल भर के लिए भी नज़रों से ओझल न होने देते । यह बात सौतेले भाइयों को पसन्द नहीं आई, वे सब हज़रत

यूसुफ़ (अलै.) से जलने लगे। उनको हज़रत यूसुफ़ (अलै.) से ऐसी ईर्ष्या पैदा हो गई कि उन्होंने उनको मार डालने का उपाय सोच लिया। ये सब भाई जंगल में बकरियाँ चराने जाया करते थे। एक दिन कह-सुनकर बाप को भी इस बात पर राज़ी कर लिया कि यूसुफ़ (अलै.) को भी जंगल ले जाएँ।

वे सौतेले भाई हज़रत यूसुफ़ (अलै.) को जंगल ले गए। वहाँ पहुँचकर उन्हें पकड़ा और एक कुएँ में ढकेल दिया और घर आकर हज़रत याक़ूब (अलै.) से कह दिया कि यूसुफ़ को भेड़िया खा गया। यह सुनकर हज़रत याक़ूब (अलै.) को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने "आह यूसुफ़ !" कहा, अल्लाह से दुआ (प्रार्थना) की और चुप हो गए।

हज़रत यूसुफ़ (अलै.) बचपन में भी ऐसे अच्छे थे कि उन्होंने भाइयों के इस अत्याचार पर भी उनको बुरा न कहा। उन्होंने अल्लाह तआला से दुआ की कि वह उन्हें कुएँ से मुक्ति दे। अल्लाह ने उनकी सुन ली। उधर से एक क़ाफ़िला गुज़रा। क़ाफ़िलेवाले प्यासे थे। वे कुएँ के पास आए, वहीं पर ठहर गए और एक आदमी को पानी भरने के लिए भेजा। उसने कुएँ में डोल डाला तो उसमें एक अत्यन्त सुन्दर बालक को देखा। उसने प्रसन्न होकर दूसरों को बताया, फिर उन्हें निकाला। ये सब लोग मिस्र जा रहे थे। उन्होंने हज़रत यूसुफ़ (अलै.) को साथ लिया और मिस्र में ले जाकर बेंच दिया।

जी हां ! बेच दिया। उस ज़माने में पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे वस्तुओं की भांति बेचे जाते थे और इस प्रकार बिके हुए पुरुष व बालक ग़ुलाम (दास) कहलाते और स्त्रियाँ लौंडी (दासी) कहलाती थीं।

कैसी विडम्बना थी कि एक नबी का बेटा मिस्र पहुँचकर ग़ुलाम हो गया ! हज़रत यूसुफ़ (अलै.) को एक बड़े आदमी ने ख़रीदा। हज़रत यूसुफ़ (अलै.) उसके घर रहने लगे और वहीं पल कर जवान हुए।

फिर काफ़ी समय के बाद एक बार ऐसा हुआ कि मिस्र के बादशाह ने एक सपना देखा। उसने बड़े-बड़े ज्ञानियों और ज्योतिषियों से स्वप्नफल पूछा। स्पप्नफल कोई न बता सका। हज़रत यूसुफ़ (अलै.) ने उस सपने का हाल सुना तो आपने स्वप्नफल बता दिया और यह भी बता दिया कि अब बादशाह को क्या करना चाहिए।

बादशाह ने यह समझ-बूझ देखी तो हुकूमत की कुँजियाँ हज़रत यूसुफ़ (अलै.) को दे दीं कि लीजिए आप ही वह कुछ कीजिए जो आप मुझसे करने के लिए कहते हैं। हज़रत यूसुफ़ (अलै.) ने देश की बागडोर सँभाली और फिर बड़ी अच्छी व्यवस्था की। जनता को आपसे बड़ा आराम और सुख मिला।

फिर हज़रत यूसुफ़ (अलै.) ने अपने माँ-बाप और भाइयों को भी मिस्र में बुला लिया। जब ये सब लोग मिस्र में पहुँचे तो हज़रत यूसुफ़ (अलै.) राज सिंहासन पर विराजमान थे। उन्होंने अपने माँ-बाप को अपने पास सिंहासन पर बिटाया और वे सब (भाई) हज़रत यूसुफ़ (अलै.) के आगे आदरपूर्वक झुक गए।

यह दृश्य देखकर हज़रत यूसुफ़ (अलै.) ने अपने पिता हज़रत याकूब (अलै.) से जो कुछ कहा उसे क़ुरआन में यों बयान किया गया है---

> "अब्बाजान! यह स्वप्नफल है मेरे उस सपने का जो मैंने पहले देखा था। मेरे पालनहार ने उसे हक़ीक़त बना दिया। उसका एहसान है कि उसने मुझे क़ैदख़ाने से निकाला, आप लोगों को रेगिस्तान से लाकर मुझसे मिलाया, हालाँकि शैतान मेरे और मेरे भाइयों के बीच फूट डाल चुका था। हक़ीक़त यह है कि मेरा रब (पालनहार) जो कुछ भी करता है उसे कोई भी समझ नहीं सकता। निस्सन्देह वह सब कुछ जाननेवाला और बड़ी हिकमतवाला है।"
>
> (क़ुरआन, 12 : 100)

हज़रत मूसा (अलै.) का बचपन

हज़रत मूसा (अलै.) के बचपन का हाल बड़ा दिलचस्प और ईमान बढ़ानेवाला है । हज़रत मूसा (अलै.) अल्लाह के वे प्रसिद्ध नबी हैं जिनका हाल कुरआन मजीद में जगह-जगह बयान हुआ है ।

हज़रत मूसा (अलै.) के समय में एक बादशाह था, उसका नाम फ़िरऔन था । वह स्वयं को ख़ुदा (या परमेश्वर) कहलवाता था । फ़िरऔन के राज्य में एक बहुत बड़े पैग़म्बर के ख़ानदान के बहुत-से लोग रहते थे । ये सब लोग 'बनी-इसराईल' कहलाते थे ।* फ़िरऔन बनी-इसराईल से बहुत जलता था । वह उनसे डरता भी था कि कहीं ये लोग विद्रोह करके मिस्र पर क़ब्ज़ा न कर लें । इसलिए वह उनको तरह-तरह से सताता और बात-बात पर क़त्ल करा दिया करता था । उसने यह आदेश भी दे रखा था कि बनी-इसराईल के यहाँ जो भी लड़का पैदा हो उसे क़त्ल कर दिया जाए और यदि लड़की पैदा हो तो उसे जीवित रखा जाए । लड़कियों से वह दासियों की भाँति काम लेता था । इस प्रकार लड़कों के क़त्ल हो जाने से बनी-इसराईल की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही थी ।

बनी-इसराईल ख़ुदा के दीन को मानने वाले थे । अगरचे उनका ईमान कमज़ोर हो गया था, लेकिन फिर भी वे फ़िरऔन को ख़ुदा मानने को तैयार न थे । अब अल्लाह की क़ुदरत देखिए कि इन ही बनी-इसराईल में हज़रत मूसा (अलै.) ने जन्म लिया । उनकी माँ बड़ी समझदार और ख़ुदा पर भरोसा करनेवाली थीं । उन्होंने सोचा कि अगर बच्चे की सूचना बादशाह को मिल गई तो वह उसे क़त्ल करा देगा । इसलिए उन्होंने यह किया कि एक सन्दूक़ में हज़रत मूसा (अलै.) को लिटा दिया, फिर सन्दूक़ को बन्द करके नील नदी में बहा दिया । और बेटी को साथ कर दिया कि वह नदी के किनारे-किनारे जाए और देखे कि बच्चा कहाँ पहुँचता है । यह लड़की सन्दूक़ को देखती हुई नील नदी के किनारे-किनारे चल रही थी ।

---

* 'इसराईल' का शाब्दिक अर्थ तो है 'अल्लाह का बन्दा' (या ईश्वर का दास), परन्तु यह अल्लाह के प्रसिद्ध पैग़म्बर हज़रत याक़ूब (अलै.) का लक़ब (उपनाम) भी था (जिनका कुछ ज़िक्र आप पिछले पाठ में पढ़ चुके हैं) । हज़रत याक़ूब (अलै.) की नस्ल से जो ख़ानदान हुए वे सभी 'बनी इसराईल' (अर्थात् इसराईल की सन्तान) कहलाए । --अनुवादक

आगे चलकर फ़िरऔन का महल मिला। महल की छत पर फ़िरऔन की पत्नी खड़ी नदी की ओर ही देख रही थी। उसने सन्दूक़ देखा तो आदेश दिया कि उसे निकाला जाए। सन्दूक़ निकाला गया और उसे खोला गया तो उसमें बच्चा निकला।

फ़िरऔन की पत्नी के कोई बच्चा नहीं था। उसने सोचा कि बच्चे को पाल लिया जाए। फ़िरऔन ने बच्चे को देखा तो उसे कुछ सन्देह हुआ। उसने चाहा कि बच्चे को क़त्ल करवा दे, परन्तु उसकी पत्नी ने समझा-बुझाकर मना लिया और इस प्रकार बच्चा महल में ही रह गया।

बच्चे के लिए एक दूध पिलानेवाली की आवश्यकता पड़ी। मिस्र की अच्छी-अच्छी दाइयाँ आईं। उन्होंने दूध पिलाना चाहा, लेकिन हज़रत मूसा (अलै.) ने किसी का दूध न पिया। यह देखकर उनकी बहन, जो सन्दूक़ के साथ-साथ महल में चली आई थी, आगे बढ़ी और कहा, "अगर तुम कहो तो मैं एक ऐसी दूध पिलानेवाली लाऊँ जिसका दूध बच्चा ज़रूर पिएगा।"

आदेश हुआ, "लाओ !"

हज़रत मूसा (अलै.) की बहन दौड़ती हुई घर आई, माँ से सारा हाल कहा और फिर माँ को ले गईं। माँ का दूध हज़रत मूसा (अलै.) ने पिया और फिर उन ही को दूध पिलाने के लिए रख लिया गया।

क्या ख़ुदा की क़ुदरत है ! हज़रत मूसा (अलै.) दुश्मन के घर पले-बढ़े, फिर जब बड़े हुए तो अल्लाह ने उनको नबी बनाया और मिस्रवालों को अल्लाह की इबादत करने की नसीहत का काम उनके सुपुर्द किया। इसपर फ़िरऔन से ठन गई तो फिर अल्लाह ने फ़िरऔन और उसकी सेना को नील नदी में डुबो दिया और इस प्रकार बनी-इसराईल को दुश्मन से छुटकारा मिला।

हज़रत सुलैमान (अलै.) का बचपन

हज़रत सुलैमान (अलै.) अल्लाह के नबी थे। हज़रत सुलैमान (अलै.) के पिता हज़रत दाऊद (अलै.) भी अल्लाह के नबी थे। अल्लाह तआला ने दोनों को नबी भी बनाया और बहुत बड़ी बादशाहत भी दी। हज़रत सुलैमान (अलै.) पर तो अल्लाह की इतनी बड़ी मेहरबानी थी कि वे जानवरों की बोलियाँ भी समझ लेते थे। यही नहीं बल्कि हवा और जिन्न* भी अल्लाह तआला के आदेश से आपके अधीन हो गए थे।

हज़रत सुलैमान (अलै.) जब छोटी आयु के थे तो आपकी प्यारी माँ आपको बड़ी अच्छी- अच्छी नसीहतें किया करती थीं। इबादत करने की भी बड़ी ताकीद रखतीं। प्यारे नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया है कि हज़रत सुलैमान (अलै.) की प्यारी माँ ने उनको नसीहत की थी कि---बेटा ! रात भर न सोते रहा करो, रात का अधिक भाग नींद में गुज़ार देना क़ियामत के दिन इनसान को अच्छे कामों से मुहताज बना देता है।

हज़रत सुलैमान (अलै.) सारी नसीहतों को ध्यान से सुनते और जो कुछ सिखाया जाता, उसपर अमल भी करते थे। अल्लाह तआला ने उनको समझ भी बड़ी अच्छी दी थी। उनके बचपन की वे बातें बहुत प्रसिद्ध हैं जिनसे पता चलता है कि वे बचपन में कितने समझदार थे।

1. एक बार हज़रत दाऊद (अलै.) की अदालत में एक मुक़द्दमा पेश हो रहा था। हज़रत सुलैमान (अलै.) भी वहाँ बैठे हुए थे। उस समय उनकी आयु मात्र ग्यारह वर्ष थी। मुक़द्दमा यह था कि एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर यह दावा था कि उसकी बकरियों ने उसका सारा खेत चर लिया और तहस-नहस कर डाला था। खेतवाले का जितना नुक़सान हुआ था वह लगभग उतना था जितने की वे बकरियाँ थीं। हज़रत दाऊद (अलै.) ने फ़ैसला दिया कि वे बकरियाँ खेतवाले को उसके खेत के नुक़सान के बदले में दे दी जाएँ।

* एक अदृश्य प्राणी, क़ुरआन के अनुसार जिसकी उत्पत्ति आग से हुई है तथा इनसान के अलावा यह वह जीव है जिसे इनसान की तरह ही अल्लाह ने बुद्धि व विवेक देकर अच्छाई और बुराई में से कोई-सा भी रास्ता चुनने का अधिकार दिया है तथा आख़िरत में इनसे भी इनके अच्छे या बुरे कर्मों का हिसाब लिया जाएगा। ——अनुवादक

हज़रत सुलैमान (अलै.) बैठे हुए मुक़द्दमे की कार्यवाही देख रहे थे । फ़ैसला सुनकर बोले, "अब्बाजान ! आपका फ़ैसला तो बिल्कुल ठीक है, खेतवाले का जो नुक़सान हुआ है वह उसे ज़रूर मिलना चाहिए लेकिन मेरी समझ में एक समाधान इससे भी अच्छा आ रहा है ।"

हज़रत दाऊद (अलै.) ने पूछा, "वह क्या समाधान है ?"

हज़रत सुलैमान (अलै.) बोले, "बकरियों का गल्ला (झुंड) खेतवाले को दे दिया जाए, वह उनका दूध पिए और उनसे लाभ उठाता रहे । और बकरियों के मालिक से कहा जाए कि वह उसके खेत को जोते-बोए, फिर जब फ़सल तैयार हो जाए तो खेतवाले को फ़सल के साथ खेत दे-दे और अपनी बकरियाँ वापस ले ले ।"

हज़रत दाऊद (अलै.) को बेटे का यह निर्णय बहुत पसन्द आया और फिर उन्होंने यही आदेश दे दिया ।

2. एक और मुक़द्दमे का फ़ैसला हज़रत सुलैमान (अलै.) ने इससे भी ज़्यादा समझदारी से किया । यह मुक़द्दमा बड़ा दिलचस्प भी है ।

हुआ यह कि दो औरतें यात्रा कर रही थीं । दोनों की गोद में एक-एक बच्चा था । दोनों एक जगह रात को ठहरीं । बड़ी उम्र की औरत का लड़का भेड़िया ले गया तो उसने छोटी उम्र की औरत का बच्चा छीन लिया और कहा कि यह बच्चा मेरा है ! फिर दोनों उस बच्चे के लिए झगड़ने लगीं । मुक़द्दमा हज़रत दाऊद (अलै.) की अदालत में पहुँचा । वहाँ बड़ी उम्र की औरत ने ऐसी चालाकी से बातें कीं कि हज़रत दाऊद (अलै.) ने बच्चा उसी को दिला दिया । छोटी उम्र की औरत रोती-चिल्लाती अदालत से निकली । रास्ते में हज़रत सुलैमान (अलै.) मिले । हाल पूछा तो क़िस्सा मालूम हुआ । हज़रत सुलैमान (अलै.) ने दोनों औरतों को बुलाया, बच्चे को लिया और आदेश दिया कि बच्चे को आधा-आधा काटकर एक-एक भाग दोनों को दे दिया जाए ।

यह आदेश सुनकर छोटीवाली औरत और अधिक रोने लगी और बोली, "मान्यवर! बच्चे को न काटिए, उसी के पास रहने दीजिए । मेरा बच्चा मेरे पास न रहे, न सही, वह ज़िन्दा तो रहेगा । काटने से तो मर जाएगा ।"

बच्चे के लिए यह तड़प देखकर हज़रत सुलैमान (अलै.) तुरन्त समझ गए कि बच्चा वास्तव में छोटीवाली औरत का ही है। उन्होंने जाकर हज़रत दाऊद (अलै.) को पूरी बात बताई। मामला हज़रत दाऊद (अलै.) की समझ में भी आ गया। उन्होंने बड़ी उम्रवाली औरत को सज़ा दी और इस प्रकार छोटी उम्रवाली औरत का बच्चा उसे मिल गया।

प्यारे रसूल (सल्ल.) का बचपन

प्यारे रसूल (सल्ल.) अभी छोटी उम्र के ही थे कि एक लड़के ने आपको बताया, "पता है ? शहर में रात के वक़्त लोग बड़ा मज़ा करते हैं । कोई नाचता है, कोई नाच देखता है, कोई गाता है तो कोई गाना सुनता है और कोई कहानियाँ कहता है तो कोई कहानियाँ सुनता है........और भी बहुत-से खेल-तमाशों से लोग दिल बहलाते हैं ।"

प्यारे रसूल (सल्ल.) ने यह सुना तो दिल में शौक़ पैदा हुआ कि एक रात जाकर शहर के खेल-तमाशे देखें । आप (सल्ल.) एक रात चले, लेकिन अल्लाह को यह मंजूर न था कि आप (सल्ल.) ऐसे खेल-तमाशों में फँसें । अल्लाह को तो यह मंजूर था कि आप (सल्ल.) बचपन में भी पाक-साफ़ और नेक रहें । तो फिर हुआ यह कि प्यारे रसूल (सल्ल.) जाते-जाते रास्ते में किसी काम से रुक गए और फिर नींद आ गई । आप (सल्ल.) सो गए और सुबह तक सोते रहे ।

इसी प्रकार एक बार और चले तो रास्ते में फूफीजान का घर मिला । फूफीजान ने देख लिया और घर में बुला लिया । फूफीजान के यहाँ भी नींद मालूम हुई तो वहीं सो रहे । जागे तो सुबह हो चुकी थी ।

प्यारे रसूल (सल्ल.) बचपन ही से बड़े शर्मीले थे । एक बार 'काबा' की दीवार गिर गई । मक्कावालों ने मिल-जुलकर उसे दोबारा उठाना शुरू किया । बूढ़े, जवान, बच्चे सब इस काम में लग गए । कुछ लोग पहाड़ पर से पत्थर लाने लगे । कुछ इन पत्थरों को काट-छाँटकर चौकोर बनाने लगे और कोई दीवार चुनने लगा । लड़के पत्थर लाद-लादकर ला रहे थे । उस समय प्यारे रसूल (सल्ल.) की आयु आठ वर्ष की थी । आप (सल्ल.) भी पत्थर लाने लगे ।

आप (सल्ल.) के साथ आपके छोटे चचा भी पत्थर ला रहे थे । उनका नाम अब्बास (रज़ि.) था । वे आयु में आप (सल्ल.) से कुछ ही बड़े थे । वे आप (सल्ल.) से बड़ी मुहब्बत भी करते थे । उन्होंने आप (सल्ल.) से कहा कि बेटा तुम भी तहबन्द खोलकर कन्धों पर रख लो, इस से कन्धे नहीं छिलेंगे और पत्थर लाने में आसानी रहेगी ।

प्यारे रसूल (सल्ल.) ने जैसे ही तहबन्द खोलना चाहा आप का बुरा हाल हो गया। शर्म के मारे बेहोश हो गए। लोग दौड़ पड़े और होश में लाने के उपाय करने लगे। लोग समझ गए कि तहबन्द खोलने की वजह से ऐसा हुआ है, इसलिए उन्होंने फिर आप (सल्ल.) से ऐसा करने को नहीं कहा।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) का बचपन

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.), प्यारे नबी (सल्ल.) के प्यारे साथी थे। वे प्यारे नबी (सल्ल.) से और प्यारे नबी (सल्ल.) उनसे बड़ी मुहब्बत करते थे। ये प्यारे नबी (सल्ल.) के सहाबा (रज़ि.) में सबसे बड़े और बुज़ुर्ग सहाबी थे। प्यारे नबी (सल्ल.) के बाद तमाम मुसलमानों ने हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) को अपना ख़लीफ़ा (इस्लामी प्रतिनिधि) चुना और हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने बड़ी अच्छी तरह इस्लामी शासन की बागडोर सम्भाली। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के बचपन के हालात में से मात्र एक घटना इस्लामी इतिहास की पुस्तकों में पाई जाती है।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) स्वयं कहा करते थे कि जब मैं बच्चा था तो एक बार मेरे बाप अबू कुहाफ़ा मेरा हाथ पकड़कर एक कोठरी में ले गए। उसमें मूर्तियाँ रखी हुई थीं। एक मूर्ति दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा, "यह तुम्हारा माबूद (पूज्य-प्रभु) है इसे सज्दा करो!

यह कहकर मुझे वहीं छोड़ दिया और ख़ुद चले गए।

मैंने बुत के पास जाकर कहा, "मैं नंगा हूँ, मुझे कपड़ा पहना!" उसने कोई उत्तर न दिया। मैंने फिर कहा, "मैं भूखा हूँ, मुझे खाना खिला!" उसने अब भी कोई उत्तर न दिया। अब मैंने एक पत्थर उठाया और कहा, "मैं तुझे मारता हूँ, अगर तू ख़ुदा है तो अपने को बचा!" उसने फिर भी कोई जवाब न दिया। फिर मैंने उसपर एक पत्थर दे मारा और वह मुँह के बल गिर पड़ा।

हज़रत अली (रज़ि.) का बचपन

हज़रत अली (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) के चचेरे भाई भी थे और प्यारे दामाद भी। वे बचपन ही से बड़े समझदार और बहादुर थे। आप अभी छोटी उम्र के ही थे कि अल्लाह तआला ने प्यारे रसूल (सल्ल.) को नबी बनाया। फिर जब प्यारे नबी (सल्ल.) ने लोगों को अल्लाह का सन्देश सुनाया, इस्लाम की ओर बुलाया तो अल्लाह के जो पाँच नेक बन्दे सबसे पहले प्यारे नबी (सल्ल.) पर ईमान लाए थे, उनमें हज़रत अली भी थे। हालाँकि उस समय उनकी आयु बारह वर्ष से भी कम थी।

नबी होने के कुछ ही दिनों के बाद प्यारे नबी (सल्ल.) ने हज़रत अली (रज़ि.) से कहा कि दावत का इन्तिज़ाम करो। हज़रत अली (रज़ि.) ने खाने-पीने का इन्तिज़ाम किया। इस दावत में प्यारे नबी (सल्ल.) के घराने के सभी लोग शरीक थे। जिनमें प्यारे नबी (सल्ल.) के चचा अबू तालिब, हज़रत अब्बास (रज़ि.) और हज़रत हमज़ा (रज़ि.) इत्यादि भी थे।

जब सब लोग खा-पी चुके तो प्यारे नबी (सल्ल.) ने एक तक़रीर की। आप (सल्ल.) ने अपनी तक़रीर (भाषण) में कहा कि मैं वह चीज़ लेकर आया हूँ जिससे तुम्हारी दुनिया भी सुधर जाएगी और आख़िरत (परलोक) भी। इस काम में कौन मेरा साथ देगा ?

प्यारे नबी (सल्ल.) की तक़रीर सुनी तो लोग कुछ न बोले। महफ़िल में सन्नाटा छा गया। उस समय हज़रत अली (रजि.) लगभग बारह वर्ष के थे। क़द भी बड़ा न था और हाथ-पाँव भी मोटे और ताक़तवर न थे। शरीर भी दुबला-पतला था और आँखें भी दुख रही थीं लेकिन थे उस वक़्त भी बड़े बहादुर और जोशीले। प्यारे नबी (सल्ल.) की तक़रीर सुनकर अपना जोश दबा न सके। वहाँ बड़े-बड़े लोग मौजूद थे। हज़रत अली (रज़ि.) ने सबके सामने प्यारे नबी (सल्ल.) से कहा---

"यह ठीक है कि इस वक़्त मेरी आँखें आई हुई हैं और यह भी ठीक है कि मेरी टाँगें पतली हैं और हाँ यह भी ठीक है कि मैं अभी बच्चा ही हूँ, फिर भी ऐ अल्लाह के रसूल ! मैं आपका साथ दूँगा !"

हज़रत अली (रज़ि.) ने यह कहा तो लोग उनका मुँह देखने लगे कि यह बच्चा क्या कह रहा है । प्यारे नबी (सल्ल.) ने जो कुछ फ़रमाया है उसे समझा भी है या यों ही जोश में आकर कह दिया ?

लेकिन आगे चलकर सबने देख लिया कि उस बच्चे यानी हज़रत अली (रज़ि.) ने इस्लाम के लिए अपनी जान लड़ा दी और उसने प्यारे रसूल (सल्ल.) के नाम को ऊँचा किया और इस्लाम का बोलबाला किया । अल्लाह उनसे राज़ी हो !

हज़रत ज़ैद (रज़ि.) बिन हारिसा का बचपन

इनसान पर जब कोई मुसीबत पड़ती है तो वह बहुत घबराता है, लेकिन देखा गया है कि वही मुसीबत उसे एक बड़े रुतबे पर पहुँचा देती है । हज़रत यूसुफ़ (अलै.) को उनके भाइयों ने कुएँ में ढकेल दिया और अपनी समझ से तो उन्हें मौत के घाट उतार दिया था, लेकिन ख़ुदा की क़ुदरत देखिए कि उसने उन्हें कुएँ से निकलवाकर मिस्र पहुँचाया, वहाँ वे ग़ुलाम बनाकर बेचे गए और फिर मिस्र की हुकूमत के कर्त्ता-धर्त्ता बना दिए गए ।

ऐसा ही हाल हज़रत ज़ैद (रज़ि.) का है । अल्लाह की हिकमत और उसके भेद को कोई नहीं जानता । हज़रत ज़ैद (रज़ि.) अपनी माँ के साथ ननिहाल जा रहे थे । उस समय उनकी आयु सात-आठ वर्ष थी । रास्ते में डाकुओं ने लूट लिया । डाकू हज़रत ज़ैद (रज़ि.) को भी माँ से छीनकर ले गए और ग़ुलाम बनाकर 'उकाज़' के बाज़ार में बेच डाला ।

ग़ौर कीजिए कि यह मुसीबत हज़रत ज़ैद (रज़ि.) की माँ के लिए, उनके बाप के लिए और ख़ुद उनके लिए कितनी बड़ी मुसीबत कही जा सकती है । लेकिन आगे का हाल पढ़कर मालूम होगा कि यही मुसीबत एक बहुत बड़ी नेमत पाने का ज़रिया बन गई ।

हुआ यह कि हज़रत ज़ैद (रज़ि.) को प्यारे नबी (सल्ल.) की बीवी हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के भतीजे हुकैम बिन हिज़ाम ने ख़रीदा और मक्का में लाकर फूफीजान को दे दिया और हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) ने प्यारे नबी (सल्ल.) को दे दिया । प्यारे नबी (सल्ल.) की ग़ुलामी से बढ़कर एक इनसान को और क्या इज़्ज़त मिल सकती है । बड़े होकर हज़रत ज़ैद (रज़ि.) ख़ुद इस ग़ुलामी पर गर्व किया करते थे और बड़ी से बड़ी क़ीमत पर प्यारे नबी (सल्ल.) की ग़ुलामी से निकलने के लिए तैयार न थे ।

हज़रत ज़ैद (रज़ि.) तो इधर प्यारे नबी (सल्ल.) की ग़ुलामी में थे उधर उनके वतन 'यमन' में उनके माँ-बाप बेटे की जुदाई में बहुत परेशान थे । वे रात-दिन रोते

और उन्हें जगह-जगह खोजते-फिरते थे। बहुत दिनों के बाद किसी ने बताया कि तुम्हारा बेटा मक्का में मुहम्मद (सल्ल.) के पास है।

यह सुनकर हज़रत ज़ैद (रज़ि.) के पिता हारिसा ने अपने भाई कअब को साथ लिया, मक्का आए, प्यारे नबी (सल्ल.) से मिले और इस प्रकार अपना दुखड़ा सुनाने लगे, "ऐ अब्दुल्लाह के शरीफ़ बेटे ! तुम सब लोग काबावाले हो, हर उस शख़्स की सहायता करते हो जिसे मुसीबत में देखते हो, तुम कैदियों को खाना खिलाते हो। हम तुम्हारे पास इसलिए आए हैं कि तुम हमारे लड़के को आज़ाद कर दो और इसके बदले जितने रूपये चाहो, ले लो। हम मुँहमाँगी रक़म देने को तैयार हैं।"

हारिसा से यह सुना तो प्यारे नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तुम यह किस लड़के के बारे में कहते हो ?" बताया कि ज़ैद के बारे में। प्यारे नबी (सल्ल.) ने हज़रत ज़ैद (रज़ि.) के बारे में सुना तो ज़रा देर के लिए चुप हो गए। सच्ची बात यह थी कि प्यारे नबी (सल्ल.) को हज़रत ज़ैद (रज़ि.) से बड़ी मुहब्बत हो गई थी। प्यारे नबी (सल्ल.) हज़रत ज़ैद (रज़ि.) को बेटे की तरह पाल-पोस रहे थे और ज़ैद (रज़ि.) भी बड़ी फ़रमाँबरदारी के साथ आपके पास रह रहे थे और वह सब कुछ सीख रहे थे जो दूसरी जगह नहीं सीख सकते थे। प्यारे नबी (सल्ल.) उनसे बहुत राज़ी और खुश थे। अब जो हारिसा ने अपने बेटे को माँगा तो प्यारे नबी (सल्ल.) को दुख हुआ। प्यारे नबी (सल्ल.) नहीं चाहते थे कि ज़ैद (रज़ि.) को नज़रों से ओझल होने दें। आप (सल्ल.) ने हारिसा से कहा , "तुम इसके सिवा कुछ और नहीं चाहते हो ?" हारिसा ने जवाब दिया, "नहीं !" प्यारे नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "अच्छा ज़ैद को बुलाओ; अगर वह तुम्हारे साथ जाना चाहे तो तुम शौक़ से ले जाओ और अगर वह मेरे साथ रहना चाहे तो खुदा की क़सम ! मैं ऐसा नहीं कि जो मुझसे अलग न होना चाहे, मैं उसे अलग करूँ !"

हारिसा और उनके भाई कअब ने यह शर्त मंज़ूर कर ली। उनका ख़याल था कि बेटा गुलाम बना हुआ मुसीबत के दिन गुज़ार रहा है, वह आज़ादी को ज़रूर पसन्द करेगा। उन्हें क्या मालूम था कि हज़रत ज़ैद (रज़ि.) उस मुबारक इनसान की गुलामी में थे जो दुनिया भर के गुलामों को आज़ादी दिलाने आया था और हज़रत ज़ैद (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) की गुलामी में बड़ी ऊँची-ऊँची बातें सीख रहे थे और खुद बड़े आदमी बन रहे थे।

हज़रत ज़ैद (रज़ि.) बुलाए गए । प्यारे नबी (सल्ल.) ने उनसे पूछा, "तुम इन दोनों को पहचानते हो ?" हज़रत ज़ैद (रज़ि.) ने उत्तर दिया, "जी हाँ, यह मेरे बाप हारिसा हैं और यह मेरे चचा कअब हैं ।" आप (सल्ल.) ने फिर हज़रत ज़ैद (रज़ि.) से फ़रमाया, "तुम मुझे भी पहचानते हो, तुमको अधिकार है कि चाहे अपने घर चले जाओ, चाहे मेरे साथ रहो ।" हज़रत ज़ैद (रज़ि.) ने उत्तर दिया, "मैं ऐसा नहीं हूँ कि आपको छोड़ दूँ, आप ही मेरे बाप हैं, आप ही मेरी माँ !"

बेटे का यह जवाब सुना तो बाप और चचा दंग रह गए । बोले, "बेटा ! बड़े दुख की बात है कि तुम ग़ुलामी से मुक्ति पा रहे हो और तुम हम सबको छोड़ रहे हो, तुम वतन जा सकते हो लेकिन तुम वतन नहीं जाना चाहते ?"

हज़रत ज़ैद (रज़ि.) ने उत्तर दिया, "जी हाँ, मुझे इनकी नेक और पाक-साफ़ शख़्सियत में ऐसी ख़ूबियाँ नज़र आईं कि मैं सब को छोड़ सकता हूँ , मगर इन्हें नहीं छोड़ सकता !" यह जवाब सुना तो प्यारे नबी (सल्ल.) ने हज़रत ज़ैद (रज़ि.) का हाथ पकड़ा और काबा की तरफ़ चले । हज़रत ज़ैद (रज़ि.) के बाप और चचा भी पीछे-पीछे चले कि देखें अब क्या होता है । काबा में पहुँचकर प्यारे नबी (सल्ल.) ने ज़ोरदार आवाज़ से कहा, "लोगो ! गवाह रहो, आज से ज़ैद मेरा बेटा है और मैं इसका वारिस हूँ और यह मेरा वारिस होगा ।"

हज़रत ज़ैद (रज़ि.) के बाप और चचा ने यह एलान सुना तो ख़ुश हो गए । दोनों समझ गए कि हज़रत ज़ैद (रज़ि.) को यहाँ जो सुख-चैन है और जो कुछ मिल रहा है वह कहीं नहीं मिल सकता । दोनों ख़ुश-ख़ुश यमन को चले गए । घरवालों को इत्मीनान दिलाया कि ज़ैद बड़े आराम से है और वह बहुत बड़ा आदमी बननेवाला है ।

सचमुच हज़रत ज़ैद (रज़ि.) बड़े होकर बहुत बड़े आदमी हुए । चूँकि इस किताब में केवल बचपन का ही ज़िक्र हो रहा है इसलिए विस्तार में न जाते हुए केवल इतना बता देना ही काफ़ी होगा कि हज़रत ज़ैद (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) के प्यारे, प्यारे नबी (सल्ल.) के प्यारे साथियों के प्यारे और सारे मुसलमानों के प्यारे थे । बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) उनकी बड़ाई पर रश्क करते थे । हज़रत ज़ैद (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) के राज़दार थे । प्यारे नबी (सल्ल.) ने अपनी फूफी की लड़की की शादी उनके साथ कर दी । प्यारे नबी (सल्ल.) जब कहीं फ़ौज भेजते और उस फ़ौज में

ज़ैद (रज़ि.) भी होते तो उन ही को अफ़सर बनाते। एक बड़े अभियान में तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.), उमर (रज़ि.), और अबू उबैदा (रज़ि.) और ऐसे ही बड़े-बड़े सहाबा थे, लेकिन इन सबका अमीर ज़ैद (रज़ि.) ही को बनाया। इससे बढ़कर और क्या रुतबा हो सकता है कि ज़ैद (रज़ि.) से अल्लाह ख़ुश हुआ, अल्लाह के प्यारे नबी (सल्ल.) ख़ुश रहे और सारे मुसलमान ख़ुश रहे और उन्होंने शहादत का रुतबा पाया।

हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) का बचपन

हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.), प्यारे नबी (सल्ल.) के उन दस साथियों (सहाबा) में से हैं जिनके लिए प्यारे नबी (सल्ल.) ने जन्नती होने का इस दुनिया ही में एलान फ़रमा दिया था। इनके बचपन का हाल बड़ा मज़ेदार है। हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) के बाप का इन्तिक़ाल हो चुका था। उनकी माँ हज़रत सफ़िया (रज़ि.) ने उन्हें पाला। हज़रत सफ़िया (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) की फूफी और हज़रत हमज़ा (रज़ि.) की सगी बहन थीं। वे बड़ी ही बहादुर महिला थीं और चाहती थीं कि उनका बेटा भी बहादुर, निडर और समझदार बने। वह अपने बेटे ज़ुबैर (रज़ि.) से बड़े-बड़े कठिन काम लेतीं और एक मिनट के लिए भी बेकार न रहने देतीं। एक बच्चे को कठिन-कठिन काम करते देखकर लोग हज़रत सफ़िया (रज़ि.) से कहते, "अरे, क्या बच्चे को मार डालोगी ?" वे उत्तर देतीं, "मैं उसे अक़्लमन्द, निडर और बहादुर बना रही हूँ।"

हुआ भी ऐसा ही, हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) बचपन ही से बड़े बहादुर और निडर हो गए। अभी ठीक से जवान भी न हुए थे कि एक पहलवान से कुश्ती हो गई। उन्होंने ऐसा हाथ मारा कि पहलवान धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा और उसका हाथ टूट गया। लोग पहलवान को लादकर हज़रत सफ़िया (रज़ि.) के पास ले गए और हाल कहा। हज़रत सफ़िया (रज़ि.) बोलीं, "सच कहना, तुमने मेरे बेटे को कैसा पाया ? बहादुर या डरपोक ?"

हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) नौजवानी ही में मुसलमान हो गए थे। प्यारे नबी (सल्ल.) से उन्हें बड़ी मुहब्बत थी। एक दिन दुश्मनों ने प्यारे नबी (सल्ल.) को क़ैद कर दिया। हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) ने सुना तो गुस्से के मारे तलवार निकाल ली और प्यारे नबी (सल्ल.) की तलाश में निकल खड़े हुए। प्यारे नबी (सल्ल.) घर पर मिले। आप (सल्ल.) ने उनको नंगी तलवार लिए और गुस्से में देखा तो पूछा, "यह गुस्सा कैसा ?" हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) ने उत्तर दिया, "मैंने सुना था कि दुश्मनों ने आपको क़ैद कर दिया है तो मैं आपको छुड़ाने निकला हूँ।"

इस छोटी-सी उम्र में यह बहादुरी और मुहब्बत देखकर प्यारे नबी (सल्ल.) बहुत खुश हुए। तारीख़ में लिखा है कि नबी (सल्ल.) की सहायता के लिए सबसे पहले जिसने तलवार निकाली वे यही नौजवान हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) थे।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) का बचपन

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) की प्यारी बेटी थीं। औरतों में हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) का रुतबा बहुत ऊँचा है। प्यारे नबी (सल्ल.) ने जिन पाँच बुजुर्ग औरतों के नाम लेकर फ़रमाया कि उनको सारी दुनिया की औरतों पर बड़ाई प्राप्त है, उनमें हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) का नाम भी शामिल है।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) की सारी ज़िन्दगी (माँ की गोद से लेकर क़ब्र तक) इस्लाम के साँचे में ढली हुई थी। वे बचपन से ही बेहद नेक और शरीफ़ थीं। अपने प्यारे अब्बाजान और प्यारी अम्मीजान का बड़ा अदब करतीं। माँ-बाप के सामने ऊँची आवाज़ से न बोलतीं। उनकी तरफ़ पीठ करके भी न बैठतीं। अब्बाजान और अम्मीजान का काम करने के लिए हर समय तैयार रहतीं और सबसे बड़ी बात यह कि वे बचपन ही से बड़ी निडर और बहादुर थीं। उनके बचपन की एक घटना बहुत प्रसिद्ध है।

यह घटना उस समय की है जब मक्का के लोग प्यारे नबी (सल्ल.) के दुश्मन हो रहे थे और उनकी यह दुश्मनी इसलिए थी कि आप (सल्ल.) अल्लाह के हुक्म से इस्लाम की तब्लीग़ (प्रचार) कर रहे थे और यह बात मक्कावालों को पसन्द न थी। मक्कावाले तरह-तरह से आप (सल्ल.) के मार्ग में रुकावटें डाल रहे थे और सताते भी रहते थे।

इसी ज़माने में एक बार नबी (सल्ल.) 'काबा' में नमाज़ पढ़ रहे थे। दुश्मनों ने देखा तो उन्हें शरारत सूझी। उन्होंने ऊँट का ओझ मँगवाकर आप (सल्ल.) की गरदन पर डाल दिया। नमाज़ की हालत में ओझ के बोझ से आप (सल्ल.) दबे जा रहे थे और दुश्मन देख-देखकर हँस रहे थे। यह बात किसी ने जाकर हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) से कही। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) की आयु उस समय 5-6 वर्ष से अधिक न थी, फिर भी वे सुनते ही बाप की सहायता को दौड़ पड़ीं। उन्होंने आकर ओझ हटाई, दुश्मनों को बुरा-भला कहा और उनको ख़ूब डाँटा।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) का बचपन

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के ज़माने में थे तो नौजवान ही, लेकिन वे भी बड़े सहाबा (रज़ि.) में गिने जाते हैं। बड़े हुए तो हदीस के बहुत बड़े इमाम माने गए। कहा जाता था कि अगर प्यारे नबी (सल्ल.) का ठीक-ठीक अनुपालन करनेवाला देखना चाहते हो तो अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) को देखो। और भी बड़ाइयाँ हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) को प्राप्त थीं। वे अपने समय के इतने बड़े आदमी थे कि लोग हज़रत उमर (रज़ि.) के बाद इन्हें ख़लीफ़ा चुनना चाहते थे। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) ने मना कर दिया था कि मेरे बेटे पर यह बोझ न डाला जाए। ऐसे बड़े बुज़ुर्ग के बचपन का कुछ हाल किताबों में मिलता है जिसमें से कुछ नीचे लिखा जा रहा है----

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) को प्यारे नबी (सल्ल.) से इतनी मुहब्बत थी कि वे हर बात में प्यारे नबी (सल्ल.) की पूरी नक़ल करने की कोशिश करते थे। आपको बचपन ही से यह शौक़ था कि प्यारे नबी (सल्ल.) पर जान न्यौछावर करें। 'बद्र' की प्रसिद्ध लड़ाई मुसलमानों और इस्लाम के दुश्मनों के बीच हुई। उस समय हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) 13 वर्ष के थे, फिर भी हथियार लगाकर फ़ौज में जा पहुँचे कि मैं भी प्यारे नबी (सल्ल.) के साथ होकर दुश्मनों से लड़ूँगा। प्यारे नबी (सल्ल.) ने इस कमसिन सिपाही को देखा तो ख़ुश हुए और समझा-बुझाकर वापस कर दिया। 'उहुद' की लड़ाई में 14 वर्ष के थे, उसमें भी जा शरीक हुए। लेकिन प्यारे नबी (सल्ल.) ने फिर वापस कर दिया कि अभी छोटे हो। आख़िरकार 'ख़न्दक' (खाई) की लड़ाई में शरीक होने का अवसर मिला। उस समय तक आपकी उम्र 15 वर्ष हो चुकी थी। प्यारे नबी (सल्ल.) उनकी बहादुरी और उत्साह देखकर बड़े ख़ुश थे।

उस बहादुरी के साथ-साथ अल्लाह ने इल्म (ज्ञान) भी बचपन ही से दिया था। समझ ऐसी अच्छी थी कि बात की गहराई तक जा पहुँचते थे। एक बार प्यारे नबी (सल्ल.) की मजलिस में बैठे थे। वहाँ उस समय दूसरे बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) भी

मौजूद थे । प्यारे नबी (सल्ल.) ने सहाबा (रज़ि.) से पूछा, "वह कौन-सा पेड़ है जो एक मुसलमान की तरह सदाबहार है । उसके पत्ते कभी नहीं झड़ते और हर वक़्त फल देता रहता है ?"

प्यारे नबी (सल्ल.) के इस सवाल पर सभी सहाबा (रज़ि.) चुप रहे, यहाँ तक कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) और हज़रत उमर (रज़ि.) भी कुछ न बोले । हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) समझ गए । कई बार हिम्मत की कि बताएँ मगर बड़ों की मौजूदगी की वजह से न बोल सके, यह सोचकर कि जब ये ही नहीं बोलते तो छोटों के लिए न बोलना ही अच्छा है ।

घर जाकर पिता को बताया कि मैं समझ गया था कि वह पेड़ खजूर का है लेकिन अदब की वजह से बता न सका । हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा, "बेटा, तुमको जवाब देना चाहिए था । अगर तुम बता देते तो यह मुझे बड़ी-बड़ी चीज़ों से ज़्यादा पसन्द आता ।"

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) के बचपन का हाल इतना ही मालूम हो सका । जब बड़े हुए और उस समय जो बड़ाई मिली उसका हाल किताबों में भरा पड़ा है । बहरहाल यह सब समझ चुके थे कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) बड़े होकर सचमुच बड़े (महान) हो जाएँगे और ऐसा ही हुआ ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) का बचपन

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.), प्यारे नबी (सल्ल.) के चचेरे भाई थे। जब ये पैदा हुए तो इनके पिता हज़रत अब्बास (रज़ि.) इन्हें प्यारे नबी (सल्ल.) के पास ले आए थे। आप (सल्ल.) ने बच्चे को देखा और दुआ दी।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) बचपन ही से बड़े समझदार थे, बड़े नेक और बड़ी सूझ-बूझवाले थे। उन्हें हर बात जानने का शौक़ था। एक दिन वे प्यारे नबी (सल्ल.) के पास गए, फिर वहाँ से दौड़ते हुए घर आए और अपने अब्बाजान, हज़रत अब्बास (रज़ि.) से बोले, "आज मैंने प्यारे नबी (सल्ल.) के पास एक साहब को देखा जिनको मैं नहीं जानता, बड़ा अच्छा होता अगर जानता कि वे कौन थे।"

हज़रत अब्बास (रज़ि.) का ध्यान हज़रत जिबरील (अलै.) की ओर गया। उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल.) से कहा। आप (सल्ल.) ने सुना तो प्यार भरी नज़रों से हज़रत अब्दुल्लाह को देखा, फिर गोद में बिठा लिया, सिर पर हाथ फेरा और दुआ की, "ऐ अल्लाह ! इस बच्चे पर अपनी बरकत नाज़िल कर और इसके द्वारा इल्म (ज्ञान) की रौशनी फैला !"

प्यारे नबी (सल्ल.) हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) को बहुत चाहते थे। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) भी आप (सल्ल.) से बहुत हिल-मिल गए थे। वे आप (सल्ल.) के छोटे-छोटे काम कर दिया करते थे। एक बार खेल रहे थे कि प्यारे नबी (सल्ल.) उधर से निकले। हज़रत अब्दुल्लाह प्यारे नबी (सल्ल.) को देखकर एक जगह छिप गए और मुसकराते रहे। प्यारे नबी (सल्ल.) ने देख लिया और जाकर पकड़ लिया, सिर पर हाथ फेरा, उसके बाद फ़रमाया, "जाओ मुआविया को बुला लाओ !"---हज़रत मुआविया (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के कातिब और मुंशी थे---हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) दौड़ते हुए गए और उनसे कहा, "चलिए, अल्लाह के नबी (सल्ल.) ने आपको बुलाया है, कोई ख़ास ज़रूरत है।"

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) को यह जानने का बड़ा शौक़ था कि प्यारे नबी (सल्ल.) घर में क्या करते हैं। यह बात जानने में हज़रत अब्दुल्लाह को कोई रुकावट भी न थी। एक तो यह कि वे प्यारे नबी (सल्ल.) के नन्हे-मुन्ने चचेरे भाई थे। दूसरे यह कि वे प्यारे नबी (सल्ल.) की पाक बीवी उम्मुल-मोमिनीन हज़रत मैमूना (रज़ि.) के सगे भानजे थे। इस रिश्ते से वे प्यारे नबी (सल्ल.) के घर में बे रोक-टोक चले जाते थे। उम्मुल-मोमिनीन (रज़ि.) उनको चाहती भी बहुत थीं। अक्सर वे रातों में ख़ाला (मौसी) के यहाँ ही सो रहते।

एक रात हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) अपनी ख़ाला के यहाँ थे और जाग रहे थे। प्यारे नबी (सल्ल.) को वुज़ू की ज़रूरत पड़ी। आप (सल्ल.) ने इधर-उधर देखा। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) समझ गए, चुपके से उठे, वुज़ू के लिए पानी लाकर रख दिया और फिर लेट गए। प्यारे नबी (सल्ल.) ने वुज़ू करने के बाद पूछा, "पानी कौन लाया था ?" हज़रत मैमूना (रज़ि.) ने बताया तो आप (सल्ल.) ख़ुश हो गए और यह दुआ दी, "ऐ अल्लाह, इस बच्चे को दीन की समझ दे और ऐसी अच्छी समझ और इल्म (ज्ञान) दे कि यह हर बात को पा जाए अर्थात् बात का मंशा (मंतव्य) समझ ले।"

एक रात प्यारे नबी (सल्ल.) जागे, आपने वुज़ू किया और नमाज़ के लिए खड़े हो गए। हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) सो रहे थे, जागे तो स्वयं भी वुज़ू किया और जाकर प्यारे नबी (सल्ल.) की बाईं ओर खड़े हो गए। आप (सल्ल.) ने सिर पकड़कर दाहिनी ओर कर लिया*। इसी प्रकार एक बार वे प्यारे नबी (सल्ल.) के पीछे जाकर खड़े हो गए तो आप (सल्ल.) ने हाथ पकड़कर खींचा और अपने बराबर खड़ा कर लिया। ये बराबर खड़े होते हुए घबराए, इसी घबराहट में खड़े-के-खड़े रह गए। नबी (सल्ल.) नमाज़ पढ़ चुके तो पूछा, "तुम्हारा क्या हाल है ?" अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल ! आप के बराबर किसी का खड़ा होना ठीक भी नहीं है ? आप तो अल्लाह के रसूल हैं।" यह समझदारी और अदब देखकर आप (सल्ल.) ने बड़ी दुआएँ दीं।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) से इस हद तक

* दर असल दो व्यक्तियोंवाली सामूहिक नमाज़ का नियम यह है कि ऐसी स्थिति में अकेला मुक़्तदी (इमाम का अनुसरण करनेवाला व्यक्ति) इमान के दाहिनी ओर खड़ा हो।
—अनुवादक

हिल-मिल गए थे कि वे हर समय आप (सल्ल.) ही के पास रहने की कोशिश करते । प्यारे नबी (सल्ल.) अपने साथियों (सहाबा) के साथ बैठे होते तो भी अब्दुल्लाह (रज़ि.) पहुँच जाते । प्यारे नबी (सल्ल.) अपने पास बिठा लेते ।

एक बार हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.), प्यारे नबी (सल्ल.) की दाहिनी ओर बैठे थे, इतने में कहीं से दूध आया । प्यारे नबी (सल्ल.) ने प्याले से दो-तीन घूँट पिया । आप (सल्ल.) का नियम यह था कि आप हर काम दाहिनी ओर से शुरू करते थे । दूध पीकर चाहा कि सहाबा (रज़ि.) को दें, दाहिनी ओर देखा तो अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) को बैठे पाया ।

"ऐ बेटे ! क़ायदे से तो तुम्हारा ही नम्बर है, लेकिन अगर तुम कहो तो तुमसे पहले बड़े सहाबा को प्याला दे दूँ ?"

प्यारे नबी (सल्ल.) यह फ़रमा रहे थे और अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) की नज़र प्याले पर उस जगह थी जिस जगह प्यारे नबी (सल्ल.) ने मुँह लगाकर दूध पिया था । हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल ! मैं बड़ी-से-बड़ी क़ुरबानी दे सकता हूँ , लेकिन यह बड़ाई न छोडूँगा कि जिस जगह आपके होंठ छू गए हैं वहाँ पर सबसे पहले मैं अपने होंठ लगाऊँ ।"

प्यारे नबी (सल्ल.) मुसकरा दिए और प्याला उन्हें दे दिया । उन्होंने घूँट-दो-घूँट दूध उसी जगह मुँह लगाकर पिया जिस जगह से आप (सल्ल.) ने पिया था, उसके बाद प्याला दूसरों की ओर बढ़ा दिया ।

इस प्रकार हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) का बचपन प्यारे नबी (सल्ल.) के पास बीता । ज़ाहिर है कि उन्होंने आप (सल्ल.) से क्या कुछ न सीखा होगा । फिर बार-बार नबी (सल्ल.) से दुआएँ लीं । यह उनकी बड़ी ख़ुशनसीबी थी । इन बातों का असर यह पड़ा कि बचपन ही में लोग उनको "समझवाला" कहने लगे थे और उनसे पूछते रहते थे कि फ़लाँ बात या फ़लाँ काम प्यारे नबी (सल्ल.) ने किस प्रकार किया ?

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) तेरह वर्ष के हुए ही थे कि प्यारे नबी (सल्ल.) को अल्लाह ने अपने पास बुला लिया । अल्पायु में भी उन्होंने नबी (सल्ल.) से जो कुछ

सीखा और याद रखा उसका परिणाम यह निकला कि हज़रत उमर (रज़ि.), बड़े-बड़े सहाबा की मजलिस में उन्हें बिठाते थे और वहाँ जब दीन (धर्म) की बातें होतीं तो अवसर देते कि अब्दुल्लाह (रज़ि.) भी बोलें ।

एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) उन सहाबियों के साथ बैठे हुए थे जो आलिम और फ़ाज़िल (अर्थात् बहुत बड़े विद्वान) थे। वहाँ उन सबके बीच हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) भी मौजूद थे । हज़रत उमर (रज़ि.) ने कुरआन की सूरा 110 "अन-नस्र" पढ़ी और पूछा, "तुम लोगों का क्या ख़याल है, इस सूरा में क्या अहम बात छिपी है ?" तमाम बुज़ुर्गों ने सूरा का अर्थ बयान किया। फिर जब अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) से पूछा तो उन्होंने कहा, "इस सूरा में नबी (सल्ल.) के इन्तिकाल की पूर्वसूचना दी गई है ।" यह सुनकर हज़रत उमर (रज़ि.) चकित हो उठे और उनकी समझदारी पर उन्हें शाबाशी दी, फिर गम्भीर स्वर में कहा, "मेरा भी यही ख़याल है ।"

कभी ऐसा भी होता कि बड़ी उम्र के सहाबा (रज़ि.) के साथ हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) को बैठे देखकर लोग कहते कि यह बात ठीक नहीं है, इन बड़ों के बराबर इस बच्चे को न बिठाना चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि.) जवाब देते, "इस बच्चे की सूझ-बूझ की धाक तुम सब के दिलों पर है, यह बात तुम सब ख़ुद भी जानते हो ।"

ज़ाहिर बात है कि जिस बच्चे पर अल्लाह का इतना फ़ज़्ल हो, जो ऊपर बयान हुआ, वह बड़ा होकर कितना बड़ा आदमी हुआ होगा । किताबों में लिखा है कि कुरआन का इल्म, हदीस का इल्म, फ़िक्ह (इस्लामी धर्मशास्त्र) का इल्म तथा साहित्य और शाइरी का उन्हें इतना ज्ञान था कि उस समय के सबसे बड़े आलिम (विद्वान) हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि.) भी उनका लोहा मानते थे। और कहा करते थे कि अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) कुरआन की बातें कितनी अच्छी तरह बयान करते हैं ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) के बहुत-से हालात किताबों में मिलते हैं जिनसे उनकी बड़ाई का पता चलता है । यहाँ जो उनके बचपन का हाल बयान हुआ है, उससे ही समझा जा सकता है कि आगे चलकर वे कितने बड़े आलिम हुए होंगे ।

एक बार अफ़्रीक़ा के बादशाह जरजीर शाह के पास एक मामला तय करने भेजे गए । उसने देखा कि मुसलमानों के ख़लीफ़ा ने एक नौजवान को भेजा है तो वह मुसकराया, लेकिन जब बात शुरू हुई तो वह दंग रह गया । फिर बोला, "मैं समझता हूँ कि आप अरब के सबसे बड़े आलिम हैं ।"

ये थे हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास, अल्लाह तआला उनसे राज़ी हो !

हज़रत हसन (रज़ि.) और हज़रत हुसैन (रज़ि.) का बचपन

हज़रत इमाम हसन (रज़ि.) और हज़रत इमाम हुसैन (रज़ि.), प्यारे नबी (सल्ल.) के नवासे थे । उनके अब्बाजान का नाम हज़रत अली (रज़ि.) और अम्मीजान का नाम हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) था । अल्लाह ने दोनों भाइयों को बड़ी समझ दी थी । दोनों हर बात और हर काम बड़ी समझदारी से करते थे । अगर अपने से बड़ी उम्रवालों को कोई बात बतानी होती तो बड़ी हिकमत के साथ बताते । ऐसी ही एक दिलचस्प घटना सुनिए---

हज़रत इमाम हसन (रज़ि.) और इमाम हुसैन (रज़ि.) ने बचपन ही में नमाज़, वुज़ू और दीन (धर्म) की बहुत सी - बातें अच्छी तरह सीख ली थीं । एक बार उन्होंने एक आदमी को देखा जो ग़लत तरीक़े से वुज़ू कर रहा था । दोनों भाई सोचने लगे कि उसका वुज़ू किस प्रकार ठीक कराएँ ? फिर उन्होंने एक तरकीब सोची ।

उन्होंने उस आदमी से कहा, "चचा जान, हम दोनों सगे भाई हैं । हम आपके सामने वुज़ू करते हैं । आप देखिए कि हम दोनों में से कौन अच्छे तरीक़े से वुज़ू करता है ।" यह कहकर दोनों भाई वुज़ू करने बैठ गए । उस आदमी ने दोनों भाइयों को वुज़ू करते देखा तो समझ गया कि वुज़ू का ठीक तरीक़ा यही है और इन दोनों बच्चों ने बड़ी हिकमत के साथ मुझे वुज़ू करने का तरीक़ा सिखाया है । वह उन दोनों की समझदारी से बड़ा प्रसन्न हुआ और यह कहता हुआ चला गया कि जिसे प्यारे रसूल (सल्ल.) ने, हज़रत अली (रज़ि.) ने और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने हर बात सिखाई हो उसका क्या कहना !

दोनों भाई बच्चे ही थे कि एक बार किसी बात पर लड़ पड़े, फिर माँ के पास शिकायत लेकर गए । हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने कहा, "मुझे इससे कुछ मतलब नहीं कि हसन ने मारा या हुसैन ने । मैं तो यह जानती हूँ कि तुम दोनों से अल्लाह नाराज़ होगा, क्योंकि अल्लाह लड़ाई-झगड़ा पसन्द नहीं करता ।"

यह सुनकर दोनों भाइयों ने सिर झुका लिया, फिर कहा, "अम्मीजान ! आप माफ़ कर दें, अब हम कभी न लड़ेंगे ।"

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "माफ़ी अपने अल्लाह से माँगो, चलो वुज़ू करो और नमाज़ पढ़कर ख़ुदा को राज़ी कर लो ।"

दोनों भाई वुज़ू करके नमाज़ के लिए खड़े हो गए और बड़े भोलेपन से अपने मालिक के आगे गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर माफ़ी माँगने लगे । कैसे अच्छे थे दोनों भाई और कैसी अच्छी थीं हज़रत फ़ातिमा, अल्लाह उन सबसे राज़ी हो !

हज़रत अनस (रज़ि.) का बचपन

जब प्यारे नबी (सल्ल.) मक्का से हिजरत करके मदीना पहुँचे तो कुछ दिनों बाद एक समझदार औरत आप (सल्ल.) के पास आईं । उनके साथ 7-8 वर्ष का एक लड़का था । समझदार महिला ने निवेदन किया, "ऐ अल्लाह के रसूल ! यह मेरा बेटा है, मुझको इससे बहुत मुहब्बत है । मैं मुसलमान हूँ और चाहती हूँ कि मेरा बेटा भी सच्चा और पक्का मुसलमान बने । इसलिए मैं इसे आपकी सेवा में लेकर आई हूँ ताकि यह आपके पास रहे और आपसे वह कुछ सीखे जो आप फैलाना चाहते हैं ।"

प्यारे नबी (सल्ल.) ने उस समझदार औरत की बात मान ली और बच्चे को अपने पास रख लिया । यह बच्चा भी अपनी माँ की तरह बड़ा समझदार था । प्यारे नबी (सल्ल.) जो काम करते, जो बात कहते, वह देखता-सुनता रहता । अगर प्यारे नबी (सल्ल.) कोई काम करने को कहते तो तुरन्त दौड़कर कर देता । हर समय प्यारे नबी (सल्ल.) के आदेशों पर कान लगाए रहता, बड़े ध्यान से आपका आदेश सुनता और बड़ी समझदारी से आप (सल्ल.) के आदेश का पालन करता ।

यह बच्चा प्यारे नबी (सल्ल.) का बड़ा आज्ञाकारी प्रसिद्ध हो गया । स्वयं प्यारे नबी (सल्ल.) भी ऐसा ही समझते थे, इसी लिए आप (सल्ल.) ने बड़े अच्छे मज़ाक़ के शब्द कहे । आप (सल्ल.) ने बच्चे को पुकारा "ओ दो कानवाले" । कहने का मतलब यह था कि ऐ ध्यान से मेरी बात सुननेवाले और आज्ञापालन करनेवाले लेकिन जिसने भी आप (सल्ल.) का यह प्यारा मज़ाक़ सुना, उसे बड़ा मज़ा आया क्योंकि हर व्यक्ति के दो कान होते हैं ।

जिस बच्चे से प्यारे नबी (सल्ल.) ने यह प्यारा मज़ाक़ किया था, वही बच्चा आगे चलकर बहुत बड़ा आलिम (विद्वान) हुआ और जिसे आज हम हज़रत अनस (रज़ि.) के नाम से जानते हैं ।

एक बार प्यारे नबी (सल्ल.) ने हज़रत अनस (रज़ि.) को किसी काम से भेजा । वहाँ हज़रत अनस (रज़ि.) को देर हो गई । माँ को मालूम हुआ तो पूछा, "देर क्यों हुई , कौन - सा ऐसा बड़ा काम था ?" हज़रत अनस (रज़ि.) उस समय थे तो बच्चे

ही, परन्तु माँ को एसी समझदारी से उत्तर दिया कि माँ उसे सुनकर बहुत खुश हुई। बोले, "खुदा की क़सम अम्मी ! वह एक राज़ है प्यारे नबी (सल्ल.) का, मैं हरगिज़ किसी को नहीं बताऊँगा ! अम्मी, आपको भी न बताऊँगा ! क्योंकि प्यारे नबी (सल्ल.) ने उसे छिपाने के लिए कहा है ।"

अम्मी ने यह सुना तो बेटे की बड़ी प्रशंसा की और बोलीं, "हरगिज़ न बताना, मुझे भी न बताना । बेटा ! वह अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का राज़ है ।"

हज़रत अनस (रज़ि.) बचपन से ही इतने समझदार थे कि उस छोटी-सी उम्र में भी अपनी समझदारी से प्यारे नबी (सल्ल.) को खुश रखा । अल्लाह उनसे राज़ी हो !

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) का बचपन

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.), प्यारे नबी (सल्ल.) के बहुत कम उम्र सहाबी (प्यारे साथी) थे। वे प्यारे नबी (सल्ल.) के एक बड़े सहाबी हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) के बेटे, हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के नवासे, उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) के भानजे, उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के भतीजे और प्यारे नबी (सल्ल.) की फूफी हज़रत सफ़िया (रज़ि.) के पोते थे। प्यारे नबी (सल्ल.) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि.) भी उनके बुज़ुर्गों में से थे। माँ का नाम हज़रत अस्मा (रज़ि.) था, जो हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) की बड़ी बेटी थीं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) के घरवालों की ये तीन बातें बहुत प्रसिद्ध हैं---

1. अल्लाह के सिवा किसी और से न डरते थे।

2. प्यारे नबी (सल्ल.) पर जान न्यौछावर करने के लिए हर समय तैयार रहते थे।

3. सच बात कहने में ज़रा भी नहीं झिझकते थे।

ये तीनों बातें हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) में भी थीं। वे अपने ज़माने में सबसे बड़े इबादत करनेवाले, सबसे बड़े बहादुर और सबसे अच्छे तक़रीर करनेवाले थे। उस ज़माने के एक प्रसिद्ध बहादुर से किसी ने पूछा, "आज सबसे बड़े बहादुर कौन-कौन हैं ?" उस बहादुर ने तीन बहादुरों का नाम लिया, उनमें अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) का नाम न था। पूछनेवाले ने पूछा, "और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर ?" बहादुर ने उत्तर दिया, "बेवक़ूफ़ ! मैं इनसान का ज़िक्र कर रहा हूँ किसी 'देव' का नहीं !"

उस बहादुर की बात से पता चलता है कि उस ज़माने में लोग हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) की निर्भीकता और बहादुरी से इतने प्रभावित थे कि वे उन्हें इनसान से परे कोई 'देव' समझते थे। इन ही अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) के बचपन का हाल पढ़िए और वैसा ही बनने का प्रयास कीजिए---

हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) मदीना में पैदा हुए। उनके पैदा होने पर सारे मुसलमानों ने खुशी मनाई। प्यारे नबी (सल्ल.) ने एक खजूर चबाकर उनके मुँह में डाली। यह वह नेमत थी जो दुनिया में आते ही सबसे पहले हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) के मुँह में गई।

एक बार हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) बच्चों के साथ खेल रहे थे। इतने में एक व्यक्ति आया और उसने चीख़ मारकर बच्चों को डराया। दूसरे बच्चे तो डरकर भागे लेकिन हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) सम्भलकर लौट पड़े ओर बच्चों को पुकारा, "साथियो! डरो नहीं, तुम सब मुझको सरदार बनाकर इसपर हमला कर दो!"

उनकी आवाज़ पर लड़के लौट पड़े। हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) ने उनको साथ लिया और उस व्यक्ति पर हमला करके उसे भगा दिया।

एक बार हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) बच्चों के साथ खेल रहे थे कि इतने में हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) उधर आ निकले। हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) का सब पर बड़ा रोब था। लड़के उनको देखकर भागे लेकिन हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) खड़े रहे। हज़रत उमर (रज़ि.) ने उनसे पूछा, "तुम क्यों नहीं भागे?" उन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया, "मैं क्यों भागता? न तो मैंने कोई ग़लती की है और न ही रास्ते की चौड़ाई कम थी कि आप निकल न सकते।"

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) यह उत्तर सुनकर मुस्कराते हुए चले गए।

यह घटना भी हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) के बचपन की ही है जब दस हज़ार इस्लाम के दुश्मनों ने मिलकर मदीना पर आक्रमण कर दिया। लेकिन अल्लाह की कृपा से मुसलमानों ने प्यारे नबी (सल्ल.) के साथ होकर सबको मार भगाया। इन इस्लाम-दुश्मनों से जब मुसलमानों की लड़ाई हुई थी तो हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (रज़ि.) अपने एक दोस्त के साथ एक टीले पर जाकर खड़े हो जाते और बिल्कुल निडर होकर लड़ाई का तमाशा देखते रहते। साथ ही उसके बारे में आपस में चर्चा भी करते जाते।

उनकी यह बहादुरी और निर्भीकता, उनके पिता हज़रत जुबैर (रज़ि.) ने देखी

तो उन्हें लेकर प्यारे नबी (सल्ल.) की सेवा में आए । उस समय हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) की उम्र लगभग 7 वर्ष की थी । प्यारे नबी (सल्ल.) उस नन्हे-मुन्ने बहादुर को देखकर मुस्कराए और फिर उनसे 'बैअत' (आज्ञापालन का वचन) ली । उसी वक़्त से हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) के पास आने लगे । प्यारे नबी (सल्ल.) के बाद हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उन्हें नियमित रूप से अपने पास रख लिया । हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) ही से दीन का इल्म सीखा । इसी का परिणाम यह था कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) दीन की सारी बातें उसी प्रकार करते थे जिस प्रकार प्यारे नबी (सल्ल.) ने की थीं । उस समय जो बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) मौजूद थे वे सब उनकी दीनदारी की तारीफ़ करते थे । हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) कहा करते थे, "लोगो ! अगर तुम लोग अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की नमाज़ देखना चाहते हो तो अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) की नमाज़ की नक़्ल करो ।"

हज़रत अम्र बिन दीनार (रह.) कहते हैं कि मैंने किसी नमाज़ी को अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) से ज़्यादा अच्छी नमाज़ पढ़ते नहीं देखा । हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) उनको बड़े अच्छे नमाज़ी, बड़े अच्छे रोज़ादार और बड़े अच्छे रिश्तेदार कहा करते थे । अल्लाह उनसे राज़ी हो !

ख़लीफ़ा उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) का बचपन

हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) मुसलमानों के एक प्रसिद्ध ख़लीफ़ा गुज़रे हैं । ये इतने अच्छे ख़लीफ़ा थे कि बहुत-से लोग इनको पाँचवाँ 'ख़लीफ़ा-ए-राशिद'* कहते हैं । इनकी ख़िलाफ़त (प्रतिनिधित्व) के ज़माने में इस्लामी हुकूमत को बड़ी तरक़्क़ी मिली । इनके बचपन की एक घटना किताबों में पाई जाती है जो दिलचस्प भी है और शिक्षाप्रद भी ।

उनके पिता अब्दुल अज़ीज़ बिन मरवान---जो उस समय मिस्र के गवर्नर थे---ने उनको दीन (धर्म) की शिक्षा के लिए मदीना भेज दिया था । मदीना में उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) वहाँ के मशहूर आलिम हज़रत सालेह बिन कैसान (रह.) की निगरानी में तालीम पा रहे थे और रहते थे अपने मामा हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) के घर । हज़रत सालेह बिन कैसान (रह.) ने जिस ज़िम्मेदारी से उन्हें शिक्षा दी उसका अनुमान इस बात से हो जाता है कि एक बार उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) ने नमाज़ में देर की । सालेह बिन कैसान (रह.) ने देर होने की वजह पूछी तो कहा, "बाल संवारने में देर हो गई ।" यह सुनकर हज़रत सालेह (रह.) ने क्रोधित होकर कहा, "अच्छा ! अब बालों के संवारने को नमाज़ से बढ़कर समझने लगे ?"

हज़रत सालेह (रह.) ने तुरन्त अब्दुल अज़ीज़ को पत्र लिखा । वहाँ से एक आदमी आया, जिसने आते ही उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) के बाल मुँडवा दिए और वे कुछ न कर सके ।

---

* 'ख़लीफ़ा-ए-राशिद' का अर्थ है इस्लामी हुकूमत का ऐसा शासक जिसने इस्लामी हुकूमत को ठीक-ठीक अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के आदेशों के अनुसार चलाया हो और स्वयं भी अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के आदेशों पर अमल करता रहा हो ।

इस प्रकार के मुख्य चार ख़लीफ़ा हुए हैं जिन्हें 'ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन' कहते हैं :

1. हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.)
2. हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.)
3. हज़रत उस्मान ग़नी (रज़ि.)
4. हज़रत अली मुर्तज़ा (रज़ि.)

इस प्रकार शिक्षा पाई थी उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) ने । हो सकता है कि इसी तरबियत के फलस्वरूप अल्लाह ने उन्हें वह सौभाग्य प्रदान किया कि वे 'ख़लीफ़ा-ए-राशिद' कहलाए । अल्लाह उनपर अपनी कृपा करे !

अल्लामा इब्ने-तैमिया (रह.) का बचपन

एक बार 'हलब' के एक बड़े आलिम दमिश्क़ आए। उन्होंने सुना कि यहाँ एक बच्चा है जिसका नाम अहमद बिन तैमिया है और वह पाठ बहुत जल्द याद कर लेता है। उनको उस बच्चे को देखने और उसकी परीक्षा लेने की इच्छा हुई। जिस रास्ते से इब्ने-तैमिया पढ़ने के लिए जाया करते थे, वहाँ वे एक दर्ज़ी की दुकान पर बैठ गए। दर्ज़ी ने बताया कि वह बच्चा अभी आता ही होगा, यही उसके स्कूल का रास्ता है, आप तशरीफ़ रखिए। थोड़ी देर में कुछ बच्चे स्कूल जाते हुए गुज़रे। दर्ज़ी ने कहा, "देखिए, वह बच्चा जिसके पास बड़ी-सी तख़्ती है, वही इब्ने-तैमिया है।"

शैख़ ने उस बच्चे को आवाज़ दी। वह आया तो उसकी तख़्ती ले ली और कहा, "इस तख़्ती पर जो कुछ लिखा हुआ है उसे पोंछ डालो।" जब वह साफ़ हो गया तो उन्होंने उसपर ग्यारह या तेरह हदीसें लिखवा दीं और कहा कि इनको पढ़ लो। बच्चे ने उनको एक बार ग़ौर से पढ़ा। आलिम साहब ने तख़्ती उठाई और कहा कि सुनाओ। बच्चे ने वे सब हदीसें सुना दीं। शैख़ ने कहा, "अच्छा अब इनको भी पोंछ डालो।" और फिर 'हवाले और सनदें' (उद्धरण और प्रमाण) लिख दीं और कहा, "पढ़ो!" बच्चे ने एक बार ध्यान से देखा और फिर सुना दिया। शैख़ ने यह ख़ूबी देखकर कहा, "अगर इस बच्चे ने लम्बी उम्र पाई तो यह ज़रूर कुछ बनकर रहेगा, क्योंकि आजकल ऐसी मिसाल मिलनी मुश्किल है।"

इब्ने-तैमिया (रह.) बड़े होकर अपने वक़्त के सबसे बड़े आलिम (विद्वान) हुए। ऐसे बड़े आलिम कि उन्होंने दुनिया से बुराइयाँ मिटाईं और इस्लाम के दुश्मनों से लड़े। अल्लामा इब्ने-तैमिया (रह.) अल्लाह के सिवा किसी से नहीं डरते थे। वे अपने समय के बादशाहों को टोकते और नसीहत करते रहते थे। उनकी किताबों को आज भी बड़े-बड़े आलिम पढ़ते हैं और उनसे लाभ उठाते हैं।

अल्लामा इब्ने-जोज़ी (रह.) का बचपन

अल्लामा इब्ने-जोज़ी (रह.) सन् 508 हि. में पैदा हुए। उनके माँ-बाप बग़दाद के रहनेवाले थे। उस समय बग़दाद में बड़े-बड़े आलिम मौजूद थे। उनकी माँ ने उस समय के प्रसिद्ध आलिम इब्ने-नासिर के मदरसे में पहुँचा दिया। अपने विद्यार्थी जीवन का हाल अल्लामा साहब स्वयं बयान किया करते थे। उन्होंने अपने बेटे को बताया कि---

"मुझे ख़ूब याद है कि मैं 6 वर्ष की उम्र में पढ़ने के लिए मदरसे गया। मुझे याद नहीं कि मैं कभी रास्ते में बच्चों के साथ खेला हूँ या ज़ोर से हँसा हूँ। 7 वर्ष की उम्र में मैं जामा मसजिद के सामनेवाले मैदान में चला जाया करता था और बड़े-बड़े आलिमों से हदीस का दर्स (पाठ) सुना करता था। ये आलिम जो कुछ कहते वह मुझे याद हो जाता। घर आकर मैं वह सब कुछ लिख लेता। मेरी उम्र के दूसरे लड़के दजला नदी के किनारे खेला करते थे या किसी मदारी का तमाशा या किसी जादूगर के करतब देखने चले जाते थे। लेकिन मैं सबसे अलग-थलग किताबों के पढ़ने में लगा होता।

मैं अपने उस्तादों और दूसरे आलिमों के पास जाने में बहुत जल्दी किया करता था। कभी देर हो जाती तो मैं इतना तेज़ दौड़कर जाता कि मेरी साँस फूलने लगती। मेरा दिन और मेरी रातें पढ़ने में ही गुज़रतीं। मेरे खाने की नियमित रूप से कोई व्यवस्था न थी। जो मिल जाता, अल्लाह का शुक्र अदा करके खा लेता। अल्लाह का शुक्र है कि मैंने पेट के कारण किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया और न इस सिलसिले में ख़ुदा के सिवा किसी और का मुझपर एहसान है।"

देखा आपने ! अल्लामा इब्ने-जोज़ी (रह.) को बचपन ही में इल्म का कितना शौक़ था और फिर उन्होंने दीन का इल्म सीखने में कितनी मेहनत की। इस शौक़ और मेहनत का फल उनको यह मिला कि अल्लाह ने उनकी सारी मुश्किलें आसान कर दीं। वे ख़ुद कहा करते थे कि उन्होंने 20 हज़ार किताबें पढ़ी हैं और किताबों

से दिल कभी उचाट नहीं हुआ। जब कोई नई किताब मिल जाती तो उन्हें ऐसा लगता मानो कोई ख़ज़ाना मिल गया हो।

इस प्रकार अल्लामा इब्ने-जोज़ी (रह.) दीन (इस्लाम धर्म) के बहुत बड़े आलिम हो गए। उन्होंने 20 हज़ार भटके हुए लोगों को राह दिखाई और सत्यमार्ग (इस्लाम) पर चलनेवाला बनाया तथा लाखों आदमियों ने उनका वाज़ (प्रवचन) सुन-सुनकर बुरे कामों से तौबा की। अल्लाह तआला हमारे और आपके दिल में भी उन्हीं की तरह काम करने की लगन पैदा करे। आमीन !

एक बुद्धिमान बालक

एक देश है इराक़। इराक़ में एक नदी है जिसका नाम है 'फ़ुरात'। इस नदी के किनारे एक नगर है 'कूफ़ा'। प्यारे नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल के सौ वर्ष के बाद कूफ़ा में बड़े-बड़े आलिम हुए। इसी कूफ़ा में कहीं से एक आदमी आ गया। यह आदमी था तो बहुत ही पढ़ा-लिखा, लेकिन था ग़ैर-मुस्लिम, और ग़ैर-मुस्लिम भी ऐसा कि इस्लाम से बहुत ही जलता था। वह अपनी बातों से यह प्रयास करता कि मुसलमानों का ईमान कमज़ोर हो जाए। इसी प्रकार उसने बे-दीनी (अधर्म) फैला रखी थी।

जब यह व्यक्ति कूफ़ा आया तो उसने कूफ़ा के आलिमों से तीन प्रश्न किए। कोई आलिम उसके प्रश्नों का उत्तर न दे सका। इससे उसका दुस्साहस और बढ़ गया। अब तो वह अधर्मी बीच बाज़ार में एक ऊँचे स्थान पर प्रतिदिन खड़ा होता और डींगें मारता कि मुसलमानों के आलिम उसकी बात का उत्तर न दे सके। मुसलमानों को इससे बड़ा दुख होता। आख़िर अल्लाह तआला ने उस अधर्मी का मुँह बन्द करने के लिए एक बुद्धिमान बच्चे को भेज दिया।

एक दिन वह बच्चा पढ़ने जा रहा था। उसने उस अधर्मी को डींगें मारते देखा तो खड़ा हो गया और उसने उस अधर्मी से कहा, "मैं तेरे प्रश्नों के उत्तर दूँगा!" उस विद्यार्थी को देखकर इधर-उधर से कुछ लोग इकट्ठा हो गए। पूछा, "मियाँ साहबज़ादे! तुम इसके सवालों के जवाब दोगे?"

बच्चे ने उत्तर दिया, "इंशाअल्लाह! (अगर अल्लाह ने चाहा तो)।"

उस अधर्मी ने पहला प्रश्न किया, "बताओ, इस समय तुम्हारा अल्लाह क्या कर रहा है?"

विद्यार्थी ने प्रश्न सुनकर कहा, "श्रीमान जी, पूछनेवाले से बतानेवाले का दरजा बड़ा होता है इसलिए आप अपने स्थान से नीचे उतर आइए और मैं आपके स्थान पर खड़ा हो जाऊँ, तब बताऊँ कि मेरा अल्लाह इस वक़्त क्या कर रहा है।"

विद्यार्थी की यह बात उस अधर्मी ने सुनी तो वह उस ऊँचे स्थान से नीचे उतर

आया। अब विद्यार्थी उस ऊँचे स्थान पर जाकर खड़ा हो गया और पुकार कर कहा, "'लोगो ! गवाह रहो, मेरा अल्लाह इस समय एक अधर्मी के रुतबे को घटा रहा है और एक मुसलमान बच्चे के रुतबे को बढ़ा रहा है ।"

उस किशोर विद्यार्थी का यह उत्तर सुनकर लोग चारों ओर से "वाह-वाह" करने लगे और बोले, "सच है, सच है ।" वह अधर्मी यह जवाब सुनकर बहुत लज्जित हुआ। अब वह नीचे स्थान पर खड़ा था और विद्यार्थी ऊँचे स्थान पर।

"हाँ, अब बता तेरा दूसरा प्रश्न क्या है ?" विद्यार्थी ने अधर्मी से कहा।

अधर्मी ने पूछा, "बताओ खुदा से पहले क्या था ?"

विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "श्रीमान जी ! ज़रा आप 9 से उलटी गिनतियाँ तो गिनिए !"

वह अधर्मी इस प्रकार गिनने लगा..9,8,7,6,5,4,3,2,1.... और चुप हो गया। विद्यार्थी ने पूछा, "श्रीमान जी, आप चुप क्यों हो गए ? गिनिए, गिनिए 1 से पहले ?" वह अधर्मी बोला, "एक से पहले तो कोई गिनती ही नहीं ।" अब विद्यार्थी ने मुस्कराकर कहा, "श्रीमान जी ! अल्लाह भी तो 'एक' है, उस 'एक' से पहले हो ही क्या सकता है ?"

विद्यार्थी का यह उत्तर सुना तो वह अधर्मी हक्का-बक्का रह गया। वह अपने माथे का पसीना पोंछने लगा और लोग उस किशोर विद्यार्थी की समझदारी पर दंग रह गए। कुछ देर के बाद विद्यार्थी ने उस अधर्मी से पूछा, "हाँ साहब, आपका तीसरा प्रश्न क्या है ?"

उसने तीसरा प्रश्न किया, "खुदा का मुँह किस ओर है ?"

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए लड़के ने एक मोमबत्ती मँगवाई। मोमबत्ती आने पर उसे जलाया, फिर उस अधर्मी से पूछा, "बताइए महाशय, इस मोमबत्ती का मुँह किधर है ?"

अधर्मी बोला, "चारों ओर ।"

विद्यार्थी ने फिर पुकारकर कहा, " लोगो ! गवाह रहो, अल्लाह भी एक नूर

(अर्थात् प्रकाश) है, उसका मुँह भी चारों तरफ़ है और वह चारों ओर देख रहा है और सब कुछ देख रहा है।"

तीसरे प्रश्न का उत्तर सुनकर अधर्मी का मुँह बन्द हो गया। वह अपना-सा मुँह लेकर वहाँ से चला गया। लोगों ने उस विद्यार्थी को बड़ी शाबाशी दी।

क्या आप जानते हैं कि ये विद्यार्थी साहब कौन थे ? ये थे हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह.), जो बड़े होकर "बड़े इमाम" कहलाए। दुनिया भर के मुसलमान इनका नाम बड़ी इज़्ज़त से लेते हैं। अल्लाह तआला हमें सौभाग्य दे कि हम इन बुज़ुर्गों की बताई हुई बातों पर चल सकें !

इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) का बचपन

अगर आप किसी पढ़े-लिखे मुसलमान से पूछें कि बड़े-बड़े इमाम कौन-कौन हैं तो वह इन चार इमामों के नाम लेगा---1. हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) 2. हज़रत इमाम मालिक (रह.) 3. हज़रत इमाम शाफ़ई (रह.) 4. हज़रत इमाम अहमद बिन हंबल (रह.)।

इन चारों इमामों में हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) को "इमामे-आज़म" (बड़े इमाम) भी कहा जाता है। हज़रत अबू हनीफ़ा (रह.) के दो शागिर्द (शिष्य) सबसे ज़्यादा प्रसिद्ध हुए। एक, इमाम मुहम्मद (रह.) और दूसरे इमाम अबू यूसुफ़ (रह.)। अगर अल्लाह तआला हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) के इन दो शागिर्दों को न पैदा करता तो आज बड़े इमाम (रह.) के इल्म (ज्ञान) को कोई न जानता। इन दोनों शागिर्दों ने बड़े इमाम (रह.) से जो कुछ पढ़ा और सीखा, उसे ऐसे क़ायदे से दुनिया के सामने पेश किया कि बड़े इमाम (रह.) प्रसिद्ध हो गए। और दूसरा लाभ यह हुआ कि आम मुसलमानों को दीन (इस्लाम-धर्म) पर अमल करने का आसान तरीक़ा मालूम हो गया। इस आसान तरीक़े को "हनफ़ी फ़िक़्ह" कहा जाता है। हनफ़ी फ़िक़्ह को इमाम मुहम्मद (रह.) और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) ने ही संकलित किया था।

हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) के इन दोनों शागिर्दों को अल्लाह ने बड़ा रुतबा दिया था। उनमें इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के इल्म की धूम उस समय के बादशाह हारून रशीद ने सुनी तो उसने उन्हें अपने देश का सबसे बड़ा क़ाज़ी (मुख्य न्यायाधीश) बना दिया। हारून रशीद उनका बड़ा आदर करता था। इमाम साहब उसे उसकी ग़लतियों पर टोक दिया करते थे और वह चुप हो जाता था। वह जब खाना खाता तो इमाम साहब को भी साथ खिलाता। एक दिन हारून रशीद के सामने पिस्ते के तेल से बना हुआ फ़ालूदा आया। उसने फ़ालूदा इमाम साहब के आगे बढ़ाया। फ़ालूदा देखकर इमाम साहब के आँसू निकल आए। बादशाह ने रोने का कारण पूछा तो इमाम साहब ने अपने बचपन का एक क़िस्सा इस प्रकार बयान करना शुरू किया---

"कूफ़ा नगर में एक बूढ़ा आदमी रहता था। उसका नाम इबराहीम

था । बूढ़ा इबराहीम मेहनत-मज़दूरी करता, बुढ़ापे के कारण मज़दूरी कम मिलती थी । उसकी पत्नी सूत कातकर कुछ कमाती । उन दोनों की कमाई मिलकर भी इतनी न होती कि घरवाले पेट भरकर खा सकते । बेचारों की यह हालत थी कि सुबह को मिल गया तो शाम को भूखे सो रहे, और अगर शाम को खा लिया तो सुबह भूखे ही मज़दूरी पर चले गए ।

उस बूढ़े इबराहीम का एक लड़का था, जिसका नाम याकूब था । याकूब 10-12 वर्ष का हुआ तो बाप ने सोचा कि उसे भी किसी काम से लगाना चाहिए । कुछ पैसे कमाकर लाएगा, घर का काम चलेगा ।

यह बात इबराहीम ने पत्नी से कही, पत्नी ने याकूब को साथ लिया, एक धोबी के घर गई और उसके घर पर नौकर रखवा दिया । मगर याकूब का दिल काम में न लगता था । उसे इल्म का बड़ा शौक़ था । वह चाहता था कि प्यारे नबी (सल्ल.) ने दुनियावालों को जो शिक्षा दी है, उसे जाने । वह चाहता था कि वह न केवल स्वयं अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल.) के आदेशों के बारे में जाने बल्कि उन्हें मालूम करके दूसरों को भी बताए और दुनिया में दीन को फैलाए ।

अब याकूब यह करता कि घर से तो काम के बहाने से निकल जाता, लेकिन जा पहुँचता एक मदरसे में । उस मदरसे में एक बहुत बड़े आलिम साहब पढ़ाया करते थे । उनका नाम था अबू हनीफ़ा (रह.) । हज़रत अबू हनीफ़ा (रह.) अपने समय के सबसे बड़े आलिम थे । अपनी धुन का पक्का याकूब हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) से सबक़ लेता रहा । इस प्रकार एक महीना बीत गया । महीने के बाद माँ-बाप ने बेटे से कहा कि इस महीने का वेतन लाए ? याकूब वेतन कहाँ से लाता । वह धोबी के यहाँ काम करने गया होता तभी तो वेतन लाता । माँ-बाप ने बार-बार पूछा तो पता चला कि बेटा इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) के मदरसे में पढ़ने जाता है ।

यह जानकर माँ बहुत नाराज़ हुई और लड़के को लेकर मदरसे पहुँची । इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) के पास गई और बोली, "हज़रत यह मेरा लड़का है, मैं सूत कात-कातकर कमाती और इसे पालती हूँ । इसे मैंने कमाई करने के लिए एक धोबी के घर नौकर रखवा दिया था, लेकिन यह आपके पास चला आता है, यह पढ़-लिखकर क्या करेगा, इसे समझाइए । यह

कोई काम-धंधा करे जिससे रोज़ी चले ।"

यह सुनकर हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) मुस्कराए और बोले, "इस लड़के को मेरे ही पास छोड़ जाओ । तुम इसे रूखी-सूखी रोटी खिलाना चाहती हो और यह पिस्ते के तेल का बना हुआ फ़ालूदा खाना चाहता है ।"

हज़रत अबू हनीफ़ा (रह.) के कहने का मतलब तो यह था कि तुम इसे छोटा आदमी बनाकर, छोटी-मोटी कमाई कराके छोटे काम लेना चाहती हो और यह बड़ा आदमी बनकर बड़े-बड़े काम करना चाहता है । लेकिन बूढ़ी औरत कुछ न समझी , उसे बड़ा क्रोध आया और वह बड़बड़ाती हुई चली गई कि इस बुड्ढे की भी मति मारी गई है ।

बुढ़िया चली गई तो बड़े इमाम (रह.) ने उसके घर का पूरा ख़र्च अपने ज़िम्मे ले लिया । इमाम साहब के व्यापार में अल्लाह ने बड़ी बरकत दी थी । वे एक बड़ी रकम याकूब की माँ को देने लगे और याकूब मियाँ अब इत्मीनान से पढ़ने लगे । याकूब मियाँ बड़ी मेहनत से पढ़ते और हज़रत बड़े इमाम (रह.) ने भी उन्हें बड़ी मेहनत से पढ़ाया । जिसका परिणाम यह हुआ कि याकूब मियाँ भी बहुत बड़े आलिम हो गए, यहाँ तक कि खुद बड़े इमाम (रह.) भी उनपर भरोसा करने लगे । उसके बाद बड़े इमाम (रह.) ने वह मदरसा और अपनी सारी किताबें जिन शागिर्दों को सौंपीं, उनमें से एक यही याकूब मियाँ थे, जो आगे चलकर "अबू यूसुफ़" के नाम से प्रसिद्ध हुए । और वही अबू यूसुफ़ (रह.) इस समय आपके साथ खाना खा रहे हैं जिनके आगे आपने पिस्ते के तेल से बना हुआ फ़ालूदा बढ़ा दिया ।

ऐ बादशाह ! इस समय मुझे बड़े इमाम के वे शब्द याद आ रहे हैं जो उन्होंने मेरी माँ से कहे थे । आज मैंने अपनी आँखों से दस्तरख़ान पर पिस्ते के तेल से बना हुआ फ़ालूदा पा लिया । अल्लाह की रहमत हो बड़े इमाम पर, कितनी सच्ची बात निकली उनकी ।

इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) यह कहानी सुनाकर चुप हो गए । हारून रशीद बहुत खुश हुआ । अल्लाह तआला हमें भी ऐसा ही इल्म का शौक़ प्रदान करे ।

शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी (रह.) का बचपन

शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी (रह.) एक मशहूर बुज़ुर्ग गुज़रे हैं । लोग उन्हें "बड़े पीर साहब" कहकर पुकारते हैं । बड़े पीर साहब सचमुच बड़े अच्छे बुज़ुर्ग थे और वह दीन का पूरा इल्म भी रखते थे । फिर इतना ही नहीं, वे दीन की हर बात इस प्रकार समझाते थे कि छोटे-बड़े सबकी समझ में आ जाती थी । आपने दीन की बड़ी सेवा की, इसी लिए तो दुनिया भर में आपका नाम बड़ी इज़्ज़त से लिया जाता है । शैख़ (रह.) का वतन गीलान नामक एक क़स्बा था, परन्तु आपने बग़दाद जाकर बड़े-बड़े इमामों से शिक्षा प्राप्त की थी । आपके बचपन की एक घटना बहुत प्रसिद्ध है ।

किताबों में लिखा है कि जब आप अपने क़स्बा गीलान में प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर चुके तो आपने अपनी माँ से कहा, "अम्मीजान ! मैं और पढ़ूँगा !" आपकी माँ भी बड़ी अच्छी थीं । उन्होंने बेटे का शौक़ देखा तो बहुत प्रसन्न हुईं और बताया कि इससे ज़्यादा पढ़ने के लिए तुमको बग़दाद जाना पड़ेगा । बड़े पीर साहब बग़दाद जाने के लिए तैयार हो गए । माँ ने ख़ुशी-ख़ुशी इजाज़त दे दी और चलते समय 40 अशरफ़ियाँ देकर कहा, "प्यारे बेटे ! मैं तुम्हें अल्लाह के लिए छोड़ रही हूँ । न जाने फिर मुलाक़ात हो या न हो । बेटा ! मैं तुमको एक नसीहत करती हूँ । वह यह कि तुम सदा सच बोलना, चाहे तुमपर कितनी ही मुसीबत आए, सच ही बोलना ।"

हज़रत अब्दुल क़ादिर जीलानी (रह.) ने अम्मीजान से वादा किया और "ख़ुदा हाफ़िज़" कहकर एक क़ाफ़िले के साथ बग़दाद की ओर चल दिए । चलते समय आपकी माँ ने वे 40 अशरफ़ियाँ आपके कपड़ों में सिल दी थीं ताकि कहीं गिर न जाएँ ।

क़ाफ़िला एक जंगल से गुज़र रहा था कि अचानक उसपर डाकुओं ने हमला कर दिया और मुसाफ़िरों का माल लूटने लगे । एक डाकू ने शैख़ अब्दुल क़ादिर (रह.) से पूछा, "लड़के ! तेरे पास भी कुछ है ?" आपने कहा, "हाँ ! मेरे पास 40 अशरफ़ियाँ हैं ।" वह डाकू समझा कि लड़का मज़ाक़ कर रहा है । वह चला गया, दूसरा डाकू गुज़रा । उसने भी यही पूछा और आपने उसे भी यही उत्तर दिया, "हाँ, मेरे पास

40 अशरफ़ियाँ हैं ।" वह डाकू भी यही समझा कि लड़का ठिठोली कर रहा है । इस प्रकार कई डाकुओं से होती हुई बात डाकुओं के सरदार तक पहुँच गई । उसने आदेश दिया कि, "लड़के को पकड़ लाओ ।"

डाकू आपको सरदार के पास ले गए । सरदार ने पूछा, "लड़के, तू अपने पास 40 अशरफ़ियाँ बताता है, क्या यह सच है ?" आपने जवाब दिया, "हाँ, मेरे पास 40 अशरफ़ियाँ हैं ।" सरदार ने पूछा, "कहाँ हैं वे अशरफ़ियाँ ?" आपने बताया, "ये देखो, मेरे कपड़ों में छिपी हुई हैं ।"

आपके बता देने पर डाकुओं का सरदार आपको आश्चर्य से देखने लगा, फिर उसने कहा, "लड़के तुझे मालूम है कि हम क़ाफ़िला लूट रहे हैं, फिर तूने अपना माल हमें क्यों बता दिया ?" आपने जवाब दिया, "मेरी अम्मी ने मुझसे सच बोलने का वादा ले लिया था, अब मैं झूठ कैसे बोल सकता हूँ ?"

एक छोटे बालक का यह उत्तर सुना तो डाकुओं के सरदार के दिल पर बड़ा प्रभाव पड़ा । देखते ही देखते वह रोने लगा, फिर बोला, "एक बच्चे को अपनी माँ से किए हुए वादे का तो इतना ख़याल है कि माल लुट जाने की भी परवाह नहीं । लेकिन मुझपर अफ़सोस है कि मैंने अल्लाह से वादा किया था कि---ऐ ख़ुदा ! तू ही मेरा पालनहार है और मैं तेरे आदेशों पर चलूँगा । अफ़सोस है कि मैं वर्षों से यह वादा भूला हुआ हूँ और अपने रब की नाफ़रमानी कर कर रहा हूँ ।"

इसके बाद सरदार ने तौबा की और डाकुओं को आदेश दिया कि सारे क़ाफ़िले का लूटा हुआ माल वापस कर दो ! उसके आदेश से सारा माल वापस कर दिया गया । उसके बाद दूसरे डाकुओं ने भी डाका डालने से तौबा की ।

बच्चो ! सब तारीफ़ अल्लाह के लिए है । यह सब अल्लाह की मेहरबानी थी कि हज़रत अब्दुल क़ादिर (रह.) को ऐसी अच्छी माँ मिलीं और यह भी अल्लाह की मेहरबानी ही थी कि आप अच्छी बातों को याद रखते थे और उनपर अमल भी करते थे । अल्लाह तआला से दुआ है कि वह हमें भी अच्छी बातों पर अमल करना सिखाए । आमीन !

सैयद अहमद शहीद (रह.) का बचपन

लगभग एक सौ पचास वर्ष हुए हमारे देश में एक अल्लाहवाले बुज़ुर्ग गुज़रे हैं, उनका नाम "सैयद अहमद" था। अल्लाह की रहमत हो उनपर! सैयद साहब (रह.) इस्लाम को फैलाने और अल्लाह का सन्देश लोगों तक पहुँचाने के लिए हर समय बेचैन रहते थे। आपका कहना था कि इस्लाम दुनिया में गुलाम बनकर रहने के लिए नहीं आया। आप यह भी कहते थे कि जब तक किसी देश की व्यवस्था अल्लाह के आदेशों पर चलनेवाले लोगों के हाथों में न हो, उस समय तक लोग अम्न और चैन से नहीं रह सकते। यही वजह थी कि आपने अंग्रेज़ों की हुकूमत का विरोध किया। सैयद अहमद शहीद (रह.) को अल्लाह की राह में अपनी जान लड़ा देने का बड़ा शौक़ था। अल्लाह की राह में जी-जान से कोशिश करते-करते ही आपने शहादत पाई। आपके बचपन के हालात भी बड़े दिलचस्प और ईमान बढ़ानेवाले हैं।

सैयद अहमद साहब (रह.) को बचपन में खेलों का बड़ा शौक़ था। लेकिन आप बुरे खेल नहीं खेलते थे। आप वही खेल खेलते जिससे जिस्म में ताक़त आए और जिनसे आदमी बहादुर और निडर बन जाए। कबड्डी आप बड़े शौक़ से खेलते। आप अपने साथियों की दो टोलियाँ बनाते, फिर एक टोली को आदेश देते कि वह दूसरी टोली पर हमला करे। इस खेल में आप बड़ी दिलचस्पी से ख़ुद भी शरीक होते और खेल-खेल में क़िले जीतने और दुश्मनों को भगाने का आनन्द लेते थे।

सैयद साहब (रह.) को कसरत करने का बड़ा शौक़ था। आप प्रतिदिन सूरज निकलने के बाद एक घण्टा ज़रूर कसरत करते और कुश्ती लड़ते। आपके यहाँ बीस-बीस, तीस-तीस सेर और मन-मन भर के मुग्दर थे। आप उन्हें कई-कई घण्टे हिलाया करते थे। आप तैरना भी अच्छी तरह जानते थे।

आपको बचपन से अल्लाह की राह में जान लड़ा देने का शौक़ था। एक बार जान की बाज़ी लगाने का अवसर आया तो आप भी तलवार लेने घर दौड़े। तलवार लेकर अपनी अम्मीजान से इजाज़त लेने गए। वे उस समय नमाज़ पढ़ रही थीं। इतने में उनकी वे माँ आ गईं जिनका बचपन में उन्होंने दुध पिया था, उन्होंने सैयद साहब को रोका और कहा, "बेटा, तुम्हें क्या पड़ी ? तुम क्यों अपनी जान जोखिम

में डालते हो ?"

सैयद साहब (रह.) की माँ ने नमाज़ का सलाम फेरा। हाल पूछा। फिर सब कुछ सुनकर उनसे बोलीं, "बुआ ! बेशक आपको अहमद से मुहब्बत है, मगर मेरे बराबर नहीं हो सकती। अहमद पर मेरा हक़ आपसे ज़्यादा है। लेकिन भला सोचो तो सही, यह रोकने का कौन-सा मौक़ा है ? इसे जाने दो।" फिर प्यार से बेटे से बोलीं, "बेटा, जल्दी से जाओ, लेकिन देखो मुक़ाबिले में पीठ न दिखाना, नहीं तो उम्र भर सूरत न देखूँगी।"

सैयद साहब (रह.) लड़ने के लिए चले गए, लेकिन समझदार आदमियों ने बीच में पड़कर झगड़ा करनेवालों में मेल करा दिया।

सैयद साहब (रह.) पर यह अल्लाह की मेहरबानी थी कि एक तरफ़ उन्हें ख़ुदा की ओर से बड़ी ही ताक़त मिली थी, और आपने ऐसा दिल भी पाया था जिसमें 'डर' नाम की कोई चीज़ नहीं थी। साथ ही आपको ऐसी अच्छी माँ भी मिली थीं जो आपको हर भले काम के लिए हर वक़्त उभारती रहती थीं। अल्लाह की रहमत हो सैयद अहमद शहीद पर और अल्लाह की रहमत हो आपकी अम्मीजान पर !

मौलाना मौदूदी (रह.) का बचपन

मौलाना मौदूदी साहब का पूरा नाम जनाब मौलाना सैयद अबुल आला है। लेकिन आप "अल्लामा मौदूदी" के नाम से दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं। मौदूदी साहब इस दौर के एक बड़े आलिम थे। आलिम ही नहीं बल्कि आपके पास जो इल्म (ज्ञान) था आप उसे दूसरों तक बड़े अच्छे तरीक़े से पेश भी करते रहते थे। आपके लिखे हुए लेख जो समझदार आदमी पढ़ता है, बड़ा असर लेता है। मौदूदी साहब बड़ी अच्छी-अच्छी किताबें लिख चुके हैं। आपकी किताबें दुनिया भर में प्रसिद्ध हो चुकी हैं और उनके अनुवाद बहुत-सी भाषाओं में हो चुके हैं।

अल्लामा मौदूदी साहब रात-दिन इस्लामी हुकूमत क़ायम करने की फ़िक्र में लगे रहते थे और इसके लिए तन-मन-धन सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार रहते थे। आपने बचपन का हाल खुद लिखा है, जो बड़ा दिलचस्प है। हम मौदूदी साहब ही के लिखे हुए लेख में से उनके बचपन का कुछ हाल, उन ही के शब्दों में, नीचे लिखते हैं। कहीं-कहीं हमने कोई शब्द ज़रा आसान कर दिया है। मौदूदी साहब लिखते हैं---

"मुझे अपनी बहुत छोटी उम्र की बातें अभी तक याद हैं। मुझे अपनी वह हैरत अब तक याद है जो पहली बार यह सुनकर हुई थी कि 'अब्बा' के 'अब्बा' को 'दादा' और 'अब्बा' की 'अम्मी' को 'दादी' कहते हैं। मेरा दिल यह मानने को किसी तरह तैयार न था कि अब्बा भी किसी के बेटे हो सकते हैं। और न मैं यही सोच सकता था कि मेरे अब्बा मेरी ही तरह बच्चे थे। यह नई बात जानकर मैं इसपर बहुत दिनों तक ग़ौर करता रहा। यह बात बड़ी जाँच-पड़ताल के बाद मेरी समझ में आई कि जितने लोग अब बड़े-बूढ़े हैं ये सब कभी बच्चे ही थे और इनके भी कोई माँ-बाप थे।

जब मैं छोटा था तो मैं 'अब्बा' और 'अम्माँ' के कोई अर्थ नहीं जानता था। मेरी समझ में नहीं आता था कि ये लोग कौन हैं ? और मैं इनके पास कहाँ से आ गया हूँ ? हाँ, यह ज़रूर था कि मैं अपने बाप को दुनिया का सबसे बड़ा और अच्छा आदमी और अपनी माँ को सबसे अच्छी औरत समझता था।

मुझे सबसे ज़्यादा मज़ा उस वक़्त आता था जब मैं बीमार होता या मुझे कोई चोट लग जाती और मेरे माँ-बाप मेरे लिए परेशान होते थे । इसी मज़े के लिए कभी-कभी जान-बूझकर भी मैं अपने आपको ख़तरे में डाल देता था । उस वक़्त जो बेचैनी मेरी माँ और बाप के दिल में पैदा होती थी, उसको देखकर मेरा दिल यह कहता था कि इन्हें मेरी बहुत चिन्ता है । इन्हीं बातों से मेरी समझ में आया कि माँ-बाप और दूसरे लोगों में क्या अन्तर है ।

मेरे मरहूम बाप ने मेरी तरबियत बड़े अच्छे तरीक़े से की थी । वे दिल्ली के शरीफ़ लोगों की बेहद सुथरी भाषा बोलते थे । उन्होंने शुरू से ही यह ध्यान रखा कि मेरी भाषा बिगड़ने न पाए । जब कभी मेरी ज़बान पर कोई ग़लत शब्द चढ़ जाता, या कोई बाज़ारी शब्द सीख लेता तो वे मुझे टोक देते और सही बोलने की आदत डलवाते । बाद में मुझको भारत के बहुत-से नगरों में रहने का अवसर मिला है । मगर बचपन में जो ज़बान पक्की हो चुकी थी, उसपर किसी जगह की बोली का असर न पड़ सका ।

मेरे अब्बाजान रातों को मुझे पैग़म्बरों के क़िस्से, इस्लामी इतिहास और भारतीय इतिहास की घटनाएँ और शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाया करते थे । इसका लाभकारी प्रभाव मैं अब तक महसूस कर रहा हूँ ।

मेरे अब्बा मेरे अख़्लाक़ (आचरण) के सुधार का बड़ा ध्यान रखते थे । उन्होंने मुझे कभी ऐसे बच्चों के साथ नहीं खेलने दिया, जिनकी आदतें बिगड़ी हुई हों । जब कभी मैं कोई बुरी आदत सीख लेता तो वे बड़ी कोशिश से उसको छुड़ाते थे ।

एक बार मैंने एक नौकरानी के बच्चे को मारा तो उन्होंने उस बच्चे को बुलाकर कहा, "तू भी इसे मार !" इससे मुझे ऐसी सीख मिली कि फिर मेरा हाथ किसी कमज़ोर पर कभी नहीं उठा । वे मुझे अधिकतर अपने साथ अपने दोस्तों के पास ले जाते थे । उनके दोस्त सब-के-सब बड़े शरीफ़ और पढ़े-लिखे लोग थे । उन बुज़ुर्गों के पास बैठने से मैं बड़ी अच्छी आदतें सीख गया ।

मेरे मरहूम बाप ने मेरे पढ़ने की व्यवस्था घर ही पर की थी । इस व्यवस्था से उनका उद्देश्य यह था कि मैं बुरे लड़कों की बुरी आदतों से बचा रहूँ और मेरी बोली ख़राब न हो ।

घर की शिक्षा मेरे लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुई । मैंने घर पर 5-6 साल में इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि जितना दूसरे विद्यार्थी 8-10 वर्षों में प्राप्त कर सकते हैं । ग्यारह वर्ष की आयु में जब मैं मदरसे की आठवीं कक्षा में दाख़िल किया गया तो, सारे विद्यार्थियों से छोटा होते हुए भी, मैं सबसे अच्छा विद्यार्थी था ।

मदरसे पहुँचकर मैंने मदरसे के शरीफ़ और इल्म के शौक़ीन लड़कों से दोस्ती कर ली । मैं अपने शिक्षकों का बड़ा आदर व सम्मान करता था । मेरे शिक्षक भी मुझसे बड़ी मुहब्बत करते थे ।

मदरसे ही में मुझको पहली बार लेख लिखने और तक़रीरों में भाग लेने का अवसर मिला । इससे मुझको महसूस हुआ कि मुझमें ज़बान और क़लम से काम लेने की क्षमता है । थोड़े ही दिनों में मुझको मदरसे से दिलचस्पी पैदा हो गई और फिर मैं तालीम में इतनी दिलचस्पी लेने लगा कि जब लम्बी छुट्टियाँ आतीं तो पहले ही से हम चंद लड़के आपस में यह प्रोग्राम तय कर लिया करते थे कि प्रतिदिन एक जगह इकट्ठे हुआ करेंगे और अध्ययन किया करेंगे और मिल-जुलकर अच्छे खेल भी खेला करेंगे ।

लेकिन—अच्छा खिलाड़ी मैं कभी न बन सका ।”